अमरबेल

अमरबेलि

MAYA,
GEORGE TOWN,
ALLAHABAD

2.2.४७

इस पुस्तक को मैं रुचि से पढ़ गया। लिखने की शैली स्वाभाविक और आकर्षक है। उपन्यास उद्देशप्रद है। मौलिक उपन्यासों में इसका स्थान ऊँचा है। आशा है लेखक और भी पुस्तकों से हिन्दी साहित्य की सेवा करेंगे।

अमरनाथ झा

—विश्वनाथ प्रसाद एम० ए०

प्रकाशक—

साहित्य सेवक कार्यालय, जालिपादेवी, बनारस।

पुस्तक मिलने के स्थान :—
१—साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग।
२—जायसवाल पुस्तकालय, मुट्ठीगञ्ज प्रयाग।

दो शब्द

श्री विश्वनाथ जी सफल उपन्यासकार हैं। उन्होंने 'अमरवेलि' के चित्रण में करुणा की रेखाओं से जो चित्र उपस्थित किया है, वह कभी धूमिल नहीं होगा।

उपन्यास की कथावस्तु वस्तुवाद की नीरस मरुभूमि से चल कर स्वस्थ कल्पना के नन्दन-निकुंज में मन्दाकिनी के प्रवाह की भाँति शान्तिदायिनी है। श्री विश्वनाथ जी ने ऐसी घटनाएँ चुनी हैं जिनमें परिताप की प्रतिहिंसा और विद्रोह की ज्वाला है। उनके कथानक में आधुनिक जीवन की प्रमुख समस्याएँ सुलझाई गई हैं और राष्ट्र के निर्माण का भविष्य-स्वप्न वास्तविक जीवन की क्रियाशीलता में रूपान्तरित किया गया है। मैं लेखक के कतिपय विचारों से भले ही सहमत न होऊँ किन्तु यह कहने में संकोच नहीं करता कि लेखक में चरित्र को मनोवैज्ञानिक दृष्टि-कोण से उभारने की पूरी क्षमता है। वह करुणा के चित्रों का प्रवीण चित्रकार है।

और अमरवेलि ? वह तो भारतीय उपन्यासों के चरित्रों में सदैव अमर रहेगी।

साकेत, प्रयाग
२-२—४७

रामकुमार वर्मा

तर्पण

माँ,

तुम्हें कोई सुख न दे सका। तुम्हारा जर्जर कलेवर अग्निदेव को सौंप कर मैंने सुख की साँस ली। प्रायः सोलह वर्ष बीत चुके हैं, किन्तु आज भी तुम आ जाती हो, क्या देखने के लिये? श्राद्ध की सामग्री कहाँ से लाऊँ? इस पथ में कहीं फूल भी तो नहीं दीखते। कँटीली झाड़ियों में से निकाल लाया हूँ, यही अमरबेलि, आई हो तो लेती ही जाओ।

विश्वनाथ

अमरबेलि

(१)

प्यासे को पानी

'पकड़िए', कह कर कन्डक्टर ने ट्राम रोक दी। चढ़ते चढ़ते एक सज्जन ट्राम को छोड़ कर चले जा रहे थे। जल्दी जल्दी चार पाँच डग रख कर पांडे जी उनके पास पहुँचे और बोले—

'रुकिए।'

जाने वाले सज्जन रुक कर पांडे जी की ओर देखने लगे। तब तक पांडे जी ने फिर कहा—

'आपके हाथ में दो चीजें आई हैं। उनमें से एक आपके लिये बिल्कुल बेकार है। कृपया उसे लौटा दीजिए।'

'कैसी चीजें?'

'मनीबेग और नोट बुक, दोनों चीजें इसी जेब में थीं। केवल नोटबुक माँग रहा हूँ। दे दीजिए।'

'मुझे आपने जेब काटने वाला समझ रक्खा है?'

'जेब काटने वाले को मैं बुरा आदमी नहीं समझता?'

'आप उसे महात्मा समझते हैं ?'

'आवश्यकताएँ महात्मा को भी विचलित कर सकती हैं। कोई भूख का मारा कहीं से रोटी उठा लावे तो उसे दंड दिलाना अत्याचार होगा। ऐसे अत्याचारी को गोली मार देनी चाहिए।'

'लेकिन रोटी न चुराकर मनीबेग चुरावे तो ऐसे चोर को ही गोली मारनी होगी।'

'ऐसा क्यों ? मनीबेग भी तो रोटी का ही साधन है ?'

'चोर आप से ज्यादा चालाक होगा। ऐसी बातों में नहीं फँस सकता।'

'न तो आप से चालाक होने का दावा रखता हूँ, न आपको फँसाने की इच्छा। मैं तो अपनी नोटबुक चाहता हूँ। आप फेंक दीजिए, मैं चुपके से उठा कर चला जाऊँगा।'

'आप मेरी तलाशी लेना चाहते हैं ?'

'नहीं, आपका विश्वास करना चाहता हूँ।'

'मुझे चोर भी समझे बैठे हैं और साथ ही मेरा विश्वास भी करना चाहते हैं ?'

'हाथ की सफ़ाई एक गुण है। किसी में यह गुण आजाय तो क्या यह आवश्यक है कि उसका विश्वास न किया जाय ?'

'आप तो फिलासफ़र दीखते हैं। अच्छी बात है। अब आप विश्वास कीजिए, मेरे पास आपकी कोई चीज नहीं है।'

'आपके पास मेरी कोई चीज नहीं है। मैंने विश्वास कर लिया। लेकिन देखिए, आप भी मनुष्य हैं, मैं भी मनुष्य हूँ, मेरी कुछ सहायता कर सकें तो कीजि ।'

'वह ऐसी चीज़ तो थी नहीं, जिसके बिना आप भूखों मर जायँगे ?'

'भूखों ही मरना पड़ेगा।'

'ऐसी क्या चीज़ थी उसमें ?'

'यही तो आपको न समझा सकूँगा। दूसरों के लिये उसमें काग़ज़ के टुकड़ों के सिवा कुछ न था, लेकिन मेरे लिये उसमें मेरे जीवन की सारी निधि थी। जब सारी दुनिया सोती थी तब दिये के तेल के साथ हृदय का रक्त सूखता रहता था और बिखरते रहते थे आँखों से मोती। ऐसे ही कुछ मोतियों को मैंने उस नोट-बुक में भर लिया था।'

'अच्छा, समझ गया, आप कवि हैं। उसमें आपकी कविताएँ थीं। चलिए उसे खोजें। बेकार की वस्तु समझ कर गिरहकट ने फेंक दी होगी तो मिल जायगी।'

जहाँ ट्राम खड़ी थी, वहीं पहुँच कर दोनों ने खोज की लेकिन नोटबुक न मिली।

'रात में परेशान होने से कोई नतीजा न निकलेगा। अब आप घर जायँ। सुबह ख़ूब तड़के मैं फिर एक चक्कर लगाऊँगा। आपकी चीज़ मिल जाय तो मुझे ख़ुशी होगी।'

'धन्यवाद, आप में सहृदयता है।'

'रहने दीजिए ऐसी तारीफ़। कल सायंकाल चौपाटी पर मिलिए। आपका शुभ नाम ?'

'करुणेश पांडे। क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ ?'

'लोग मुझे दीपक कहते हैं।'

'बिल्कुल कवियों का सा नाम !'

नवपरिचित को नमस्कार करके पांडे जी चले गये। अगले दिन चौपाटी पर बैठ कर पांडे जी लहरों की लीला देख रहे थे तब तक पीछे से किसी ने कहा—'नमस्कार, पांडे जी।'

सफ़ेद सिल्क की अचकन, दूध सा चमकता हुआ चूड़ीदार पाजामा, सफेद रेशमी मोजे के ऊपर सफ़ेद पालिश का पम्प पहने हुए, चाँदी की मूठ वाली सफ़ेद छड़ी हाथ में लिये दीपक जी खड़े थे। आँखों पर सफ़ेद सेलुलाइड के फ्रेम का चश्मा चढ़ा हुआ था। गौर सुडौल मुख पर मुस्कुराहट खेल रही थी। नाक से नीचे और होंठ के ऊपर का मैदान साफ़ था। इसलिये यह अनुमान करना कठिन था कि वह सत्तरह में हैं या सत्ताइस में। उन्हें देखते ही पांडे जी उठकर बोले—

'नमस्कार, दीपक जी।'

'आपकी नोट बुक मिल जाय तो क्या ख़ातिर कीजिएगा, पांडे जी ?'

'मिल गई ? कहाँ ?'

'कहाँ ! यह भी बतलाऊँ ? किसी को जेल भेजवाना चाहते हैं क्या ?'

'अच्छा, जाने दीजिए, मत बतलाइये। इसके लिये आपको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा होगा।'

'उस कष्ट का आपको मूल्य भी चुकाना पड़ेगा।'

'कैसे चुका सकूँगा, दीपक जी ? उपकार का बदला भी कोई चुका सका है ?'

'बातें बनाने से काम नहीं चलेगा। मेरे कष्ट का मूल्य आपको चुकाना ही पड़ेगा।'

'किस प्रकार?'

'अपनी एक कविता सुनाकर।'

'मैं सुनाऊँ? मेरे मुँह से अच्छी नहीं लगेगी।'

'काम पूरा भी नहीं हुआ और टाल मटोल करने लगे।'

'नहीं, नहीं, मैं तैयार हूँ।'

'तो सुनाइए।'

'नोटबुक तो दीजिए।'

जेब टटोल कर, दीपक जी ने पछतावे के साथ कहा—

'ओह, मैं तो भूल गया। कपड़े पहनते समय उसे जेब में न डाल सका। आज क्षमा करें, कल अवश्य मिल जायगी।'

'आपके साथ चलूँ?'

'मेरे कमरे से अपना माल बरामद करा कर मेरे हाथों में हथकड़ी डलवाने के लिये?'

यह प्रश्न सुनकर पांडे जी उदास हो गये। उन्होंने कोई उत्तर न दिया। दीपक जी ने मुस्कुराते हुए फिर कहा—'निराश न हों, पांडे जी, यह तो एक विनोद था। आपका हृदय निश्छल है। मैं उसे देख रहा हूँ। कभी अपने घर पर भी आपको ले चलूँगा। इस समय तो अपनी एक रचना सुनाइए।'

'नोटबुक तो है नहीं, सुनाऊँ कैसे?'

'दीपक जी के आगे यह चालाकी नहीं चल सकती। प्रत्येक कवि को अपनी कुछ रचनाएँ अवश्य याद रहती हैं।'

'आप ठीक कह रहे हैं किन्तु नोट बुक खो जाने से कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।'

'आप व्यर्थ ही अधीर हो रहे हैं। आपकी नोटबुक मेरे कमरे में मेज पर पड़ी हुई है। कल इसी स्थान पर इसी समय आपको अवश्य मिल जायगी।'

'तो चलिए, कोई एकान्त स्थान देखें।'

एकान्त स्थान में पहुँच कर पाँडे जी ने कहा—

'सुनिए, कविता का शीर्षक है—'एक ध्य. ~।'

पांडे जी सुनाने लगे—

इस अमल सजल सरिणी में,
उठती हैं नई हिलोरें।
मेरी चंचल तरिणी में,
लगती हैं मधुर झकोरें॥

उल्लासित लहरें उठकर,
थपकी फिर फिर दे जातीं।
यह मन्त्र-मुग्ध सी नौका,
क्रीड़ातुर हो मँडराती॥

कल-कंज-मुखी सरिणी ने,
शैवाल जाल में सोकर।
मन नाविक को ललचाया,
यों मुक्त कुंतला होकर॥

हैं बाहुपाश-सी उठतीं,
उत्तुंग ऊर्मि - मालाएँ।

प्यासे को पानी

ऐसी सरिणी के उर में,
यह तरिणी क्यों न समाये ?

सागर विशालता अपनी,
है बार बार दिखलाता।
'अपनी छोटी सी तरिणी,
खे लो, मुझमें' कह जाता॥

क्यों अपना लघु जीवन-कण,
जलनिधि को अर्पित कर दूँ ?
मोती के इस दाने को,
रत्नाकर में क्यों धर दूँ ?

क्यों सागर कहलाने को,
मैं अपनी साध मिटाऊँ ?
मैं क्यों न इसी सरिणी में,
अपना संसार बसाऊँ ?

मेरी उच्छ्वासें इसका,
उर स्पन्दित कर लहराएँ।
ये आँखें इसके रस में,
मीनतामयी मँडराएँ॥

मेरे जीवन का यह कण,
इसके जीवन में लय हो।
जीवन की इस सन्ध्या में,
अति सुन्दर मधुर प्रलय हो॥

प्यासी सजला सरिणी को,
लोहित अम्बर पहनाकर।
छिप गई रश्मियाँ रवि की,
मिलने का साज सजाकर॥

लो, प्रेयसि! हम तुम मिल लें,
उर से उर-प्यास बुझावें।
नस नस में मिलन नशा हो,
अलसाएँ, चिर सो जावें॥

'ओह, आप में इतनी प्यास! जलती हुई प्यास कविता बन कर तड़प रही है।'

'यह तो आप नहीं बोल रहे हैं. आपकी सहृदयता बोल रही है। अब आप भी कुछ सुनाइए।'

'वाह, आपने मुझे भी कवि समझ लिया! मैं यह मर्ज नहीं पालता।'

'आप कितना ही छिपाइए किन्तु कवि का हृदय कहीं छिप सकता है, दीपक जी! वह तो ऐसे दीख रहा है जैसे शीशे में दीप-शिखा। सुनाइए कुछ।'

'आपकी नोटबुक खोज कर मानो मैंने एक बला मोल ले ली।'

'उस बला को आप बड़ी सरलता से फेंक सकते हैं। दो चार लाइनें सुनाइए और बला टल जाय।'

'इस रोग से मैं छूट चुका हूँ। पांडे जी, इस समय आपका आग्रह पूरा किये देता हूँ, लेकिन फिर हम आप मिलें तो हममें से कोई इस प्रकार का आग्रह नहीं करेगा।

'हम मिलेंगे ही क्यों !'

'मिल भी सकते हैं।'

'अच्छी बात है। ऐसा आग्रह नहीं करूँगा। सुनाइए।'

'तो सुनिए। कविता का शीर्षक है 'प्रतिहिंसा'—

"तुम मखमल पर मलयानिल में,
मधुकरण पीकर पलने वाले !
तुमको बस खेल तमाशे हैं,
जग के सारे जलने वाले !!
तुम दूर दूर से कुशल पूछ,
मुसकाते हो क्या बतलाऊँ !
आओ समीप, बैठो, पल भर,
मैं हृदय खोलकर दिखलाऊँ ॥
संगीत-सुधा के प्यासे तुम,
कहते हो मुझसे कुछ गाऊँ !
मैं कालकूट आकंठ पिये,
कोकिल का कंठ कहाँ पाऊँ ॥
भूलीं रागिनियाँ, चाहो तो,
मैं हाहाकार सुना दूँगा !
बेसुरे हृदय के तारों का,
कर्कश झंकार मचा दूंगा ॥
पल भर में चकनाचूर करे,
जो महलों को, मीनारों को।

अमरवेलि

जो निगले सागर को, गिरि को,
अवनी को, शशि-रवि-तारों को।
जिसकी लहरों में बेखुद-सा,
मैं स्वयं डूबता तिरता हूँ।
दिल के छोटे से प्याले में,
तूफ़ान लिये मैं फिरता हूँ॥

बचपन की भोली दुनिया में,
अपने पौधों-सा पाला था।
उठते यौवन के सपनों में,
जिनके दम से उजियाला था।
जिनको तेरी बदमस्ती ने,
पामाल किया, क्या बतलाएँ।
खिलने से पहले कुम्हलाईं,
वे मेरी घायल आशायें॥

जिनको खोकर दीवाना-सा,
मैं वात-चक्र-सा फिरता था।
'बेगानी दुनिया में कब तक,
जीना है?' सोच सिहरता था।
यों देख मुझे अपनाने को,
वे नया जन्म लेकर आईं।
कोमलता तज प्रतिहिंसा की,
वे निर्मम मूर्ति बनी आईं॥

मैं चुप हूँ, बेसुध हूँ, अपने,
उर के मंथन को पीता हूँ।
ठुकरा लेवे कोई, मग के,
पाषाण-खंड-सा जीता हूँ।
विस्फोट कभी हो जावेगा,
जल जावेंगे हीरे मोती।
सोले सुख से जब तक मेरे,
उर की ज्वालामुखियाँ सोतीं।"

'आपके भीतर आग धधक रही है दीपक जी।'

'उसे बुझा चुका हूँ।'

'उसे बुझा कर एक होने वाले कवि को आपने मिटा दिया। देखिए, अब भी उस आग का एकाध कण बचा होगा। हवा पाते ही ऊपर का भस्म उड़ जायगा, आग जाग उठेगी। उसे जीवित रखिए।'

'अपने आपको जलाने के लिये? भूखों मरने के लिये? आपकी तरह प्यासा रहने के लिए?

'आप सच कहते हैं, लेकिन अपनी इस शक्ति को एक नया मार्ग दिखा सकें, तो भूखा प्यासा रहने का भय जाता रहेगा।'

'कौन सा मार्ग?'

'बात यह है कि कविताएँ थोड़े ही लोग पढ़ा करते हैं। इसलिये कवि को कुछ प्राप्ति नहीं होती। यदि आप उपन्यास लिखें......।'

'पेट पालने के लिये उपन्यास लिखूँ? वाणी के भव्य भवन में कूड़ा करकट भरता रहूँ, केवल पेट भरने के लिये? अपनी शक्ति

का इससे अच्छा उपयोग करता हूँ, पांडे जी। जितना दिमाग़ खपाकर आप चार लाइनें लिख लेते हैं, उतना ही दिमाग़ लड़ाकर मैं चार हज़ार जुटा लेता हूँ।'

'सचमुच, आपका व्यवसाय बहुत बड़ा होगा।'

'आप मेरा व्यवसाय देखना चाहते हैं?'

'चाहता तो हूँ।'

'लेकिन भूखा प्यासा प्राणी किसी चीज़ को ध्यान लगा कर देख नहीं सकता। मेरी शक्ति का उपयोग आप देखना ही चाहते हैं तो चलिये, पहले आपकी प्यास बुझा दूँ।'

'कैसे?'

'बस, मेरे साथ चले चलिये। आपने अपना पूरा परिचय तो दिया ही नहीं।'

'मेरी जन्म-भूमि है, बनारस। आप भी तो युक्त-प्रान्त के ही दीखते हैं।'

'आपका अनुमान ठीक है। कहते चलिए।'

'गाँव में घर है। दस बीघे खेत हैं। भाई भतीजे खेतबारी सँभालते हैं। मैं नगर के एक स्कूल में शिक्षक हूँ।'

'तब तो आपके मज़े ही मज़े हैं। छः महीने काम, छः महीने आराम। कहीं दुकान खोलकर बैठ गये होते तो आज बम्बई की सैर करने का समय आपको कैसे मिलता?'

'केवल सैर करने नहीं आया हूँ, दीपक जी।'

'तो क्या धन कमाने के इरादे से आये हैं?'

'धनवान बनने की कामना मैंने कभी नहीं की, दीपक जी।

फिर भी मैं तीन कन्याओं का पिता हूँ। उनके भविष्य की चिन्ता मेरे लिये चिता बन गई है। सिर के बाल सफ़ेद हो चले।'

'इसकी चिन्ता तो छोड़िये। प्यास बुझाने की सामग्री मिलते ही सफ़ेद बालों पर स्याही दौड़ जायगी। अब यह बतलाइए कि धन-प्राप्ति का कोई साधन भी आपने देखा ?'

'अभी तक तो एक भी नहीं दीखा।'

'यहाँ आने से पहले आपने कुछ तो सोचा ही होगा।'

'मेरी कवितायें पढ़ कर मेरे मित्र ने कहा था—ऐसी सुन्दर कविताएँ लिखते हुए भी आप चालीस रुपये महीने की नौकरी कर रहे हैं, पांडे जी ! बम्बई पहुँच कर किसी फ़िल्म कम्पनी के लिये आप गाने लिखने लगें तो आपके दिन बदल जायँ।'

'तब तो आज के दिन आप मेरे मेहमान हैं।'

'फिर किसी दिन आपका मेहमान हो लूँगा, दीपक जी। आज तो जाने दीजिए, मेरा मित्र प्रतीक्षा कर रहा होगा।'

'सामने सागर लहरा रहा है, पांडे जी। यहाँ से आप प्यासे लौट जायँ, यह तो मुझसे न देखा जायगा।' कह कर दीपक जी ने सड़क पर जाती हुई विक्टोरिया को रोकने के लिये हाथ उठाया।

'इस सहानुभूति के लिये, धन्यवाद। अब आज्ञा दीजिए, चलूँ।'

'मैं भी आपके साथ चल रहा हूँ।'

'कहाँ ?'

'पहले तो इस विक्टोरिया में, बैठिए तो सही।'

पांडे जी का हाथ पकड़े हुए दीपक जी विक्टोरिया में जा बैठे। एक सुन्दर मकान के सामने विक्टोरिया रुकी। पांडे जी को आगे

करके दीपक जी सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। ऊपर कमरा सजा हुआ था। उसमें कोई था। आयु के विचार से हम उसे लड़की भी नहीं कह सकते, साथ ही स्त्री कहना भी ठीक नहीं जँचता। आइने के सामने वह बाल झाड़ रही थी। उसमें रूप था या बिजली चमक रही थी। उसे देखते ही पांडे जी ने आँखें फेर लीं। पैरों की आहट पाकर वह स्वयं द्वार पर आकर बोली—'चले आइए, रुक क्यों गये? आपही का घर है।'

तब तक पांडे जी का हाथ पकड़े हुए दीपक जी ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने दोनों में परिचय कराते हुए कहा—'आप हैं सुश्री किरणमाला, आप हैं मेरे मित्र कविवर करुणेश जी पांडेय।'

'नमस्कार पांडे जी, विराजिए।' मन्द मुसकान के साथ मधु बरसाती हुई एक मीठी चितवन डालकर किरणमाला ने पांडे जी का स्वागत किया। उन्हें सोफे पर बैठा कर उसने कहा—"एक कवि के चरण मेरी कुटिया में आए, यह एक असाधारण घटना है। अपने इस सौभाग्य पर मुझे गर्व है। इस अनुग्रह के लिये आपकी क्या सेवा करूँ करुणेश जी?

संकोचवश पांडे जी की आँखें नीचे की ओर झुकी हुई थीं। उनके बोलने से पहले ही दीपक जी बोल पड़े—

'पांडे जी प्यासे हैं।'

'नहीं, नहीं।' पांडे जी बोल उठे।

'नहीं नहीं क्यों? अपने घर में आकर भी तकल्लुफ़ करते हैं? इन्हें रोकिए दीपक जी, मैं अभी लाती हूँ।'

किरणमाला ने स्विच दबाई। बिजली की रोशनी कमरे में फैलाकर बिजली की तरह चमकती हुई वह दूसरे कमरे में समा गई।

'आप बैठे रहें, पांडे जी, मैं दस मिनिट में आ जाऊँगा। बड़ा आवश्यक काम है।'

'कैसा काम?'

'मेरे व्यवसाय से सम्बन्ध रखता है।'

'मैं भी चलूँ?'

'मेरा व्यवसाय देखने के लिये? अभी नहीं, समय आने दीजिए; तब आपको दिखा दूँगा। आप विश्वास रखिए। जाऊँ?'

'यहाँ कुछ अच्छा नहीं लगता है, दीपक जी। मुझे जाने दीजिए।'

'बड़ा अच्छा लगेगा। दो मिनिट रुकिए तो सही, वह अभी आ जाती है।'

'यहाँ नहीं बैठ सकता दीपक जी, क्षमा कीजिए।' कह कर पांडे जी उठे। द्वार के पास उन्हें रोककर दीपक जी ने फिर कहा—

'लेकिन इस समय आप किरनमाला के मेहमान हैं। उससे बिना पूछे चले जायँगे तो उसका हृदय क्या कहेगा?'

दीपक जी की बात पूरी भी न होने पाई थी कि 'छम-छम-छम' घुँघरू की आवाज सुनाई पड़ी। आवाज के साथ ही सुनहली सारी में अग्नि-शिखा की तरह लपलपाती हुई किरणमाला ने कमरे में प्रवेश किया। उसके एक हाथ में काँच की सुराही थी, उसमें थी लाल रंग की पेय वस्तु। उसके दूसरे हाथ में था एक प्याला।

"छमा छम, छमा छम' घुँघरू का झंकार करती हुई कमरे में ऐसे लहराने लगी, जैसे मुक्त आकाश में हवा के साथ सुनहला बादल। उसके कंठ से एक स्वरधारा बहने लगी—

'पी ले प्यासे पाहुन प्यारे।'

इतना ही नहीं, उसकी आँखों में भी कोई चीज़ छलक रही थी। वह चीज़ ऐसी थी जैसे प्यासे कबूतर के लिये प्याले में छलकता हुआ जल। 'पी ले प्यासे पाहुन प्यारे' का सम्मोहन मंत्र मारती हुई वह पांडे जी के सामने खड़ी हो गई। अपनी आँखों की सारी मादकता पांडे जी की आँखों में उँडेलती हुई उसने सुराही को सोफ़े के सामने वाली सेज़ पर रख दिया और पांडे जी का हाथ पकड़ लिया। 'पी ले प्यासे पाहुन प्यारे' का मंत्र बार बार दुहराती हुई फिर पांडे जी को सोफ़े पर लाने के लिये वह मंद मलयानिल जैसे मधुर झोंके देने लगी। वह प्रयास सफल हुआ। पांडे जी सोफ़े की ओर गतिशील हुए। दबे पाँव दीपक जी ऊपर वाले कमरे में चले गये।

पांडे जी को सोफ़े पर बैठा कर किरणमाला ने प्याला भर लिया। बड़े आग्रह के साथ वही मंत्र दुहराती हुई पांडे जी के मुँह से वह प्याला लगाने लगी। पांडे जी ने मुँह फेर कर कहा—

'मुझे क्षमा करें देवी जी।'

'ऐसा क्यों, करुणेश जी? आज पहली बार अपने मंदिर में आप आये, और मैं आप का सत्कार न कर सकूँ? यह अपमान होगा।'

'आपने यथेष्ट सत्कार कर दिया, किरन देवी, कवि तो भाव का ही भूखा होता है।'

'नहीं, मेरे देवता, यह पूजा ग्रहण करनी होगी।'

'किसे देवता कह रही हैं?'

'आपको।'

'स्त्रियों के लिये पति ही सबसे बड़ा देवता होता है।'

'देवता का स्थान पति से ऊँचा होता है, कविवर। क्या आप की श्रीमती आपको ही पूजती हैं? किसी अन्य देवता को पूजने नहीं जातीं? यदि जाती हैं तो आप ही उनके सबसे बड़े देवता कैसे माने जा सकते हैं? देवता का स्थान यदि पति के बराबर ही है तब तो आपकी धर्मपत्नी अनेक पतियों की पत्नी हुई।'

'मैं तो ऐसा देवता नहीं हूँ, जैसा आप समझ रही हैं।'

'आपका इस प्रकार सोचना भी देवत्व का लक्षण है। हृदय की सरलता भी देवता का ही एक गुण है। आप में सरलता है, सहृदयता है, आप कवि हैं, आप देवता हैं। यह लीजिए, अपनी श्रद्धा और अपनी भक्ति इस प्याले में भर कर लाई हूँ। इस भेंट को न ठुकराइए।'

'ऐसा ही है तो जल लाइए। देवता की पूजा जल, पत्र, पुष्प और फल से ही होती है।'

'यह भी जल और फल के सिवा कुछ नहीं है, मेरे देवता। यह तो केवल अंगूरों का रस है।'

'क्षमा कीजिये, मैं शराब नहीं पी सकता।'

'यह क्या! सुर-सुन्दरी सुरा देवी का यह अपमान! मेरी श्रद्धा-

मयी भेंट का यह तिरस्कार ! मेरे रूप को छोड़ दीजिए, मैं रूपवती नहीं हूँ। आप मेरे हृदय की ओर तो देखते ! उसे तो ठेस न पहुँचाते ! किसी फूल को पैर से रौंद डालना आपने कहाँ सीखा करुणेश जी ?'

कुछ देर तक पांडे जी की ओर साग्रह ताकती हुई वह मूक निवेदन करती रही। फिर बोल उठी—'नहीं, नहीं, मैं समझ गई। यह तो संकोच था, शर्मीलापन था, तकल्लुफ़ था। कवि का हृदय किसी अबला के हृदय को ठेस नहीं पहुँचा सकता। इसे मैं ख़ूब जानती हूँ। आप तो मेरी भक्ति की परीक्षा ले रहे थे। अब इस प्याले को मुँह से लगा लीजिए, जिससे मैं आपका प्रसाद पा सकूँ।'

किरणमाला ने एक हाथ से प्याले को पांडे जी के मुँह से लगाया। पांडे जी शान्त थे।

'ओह, करुणेश जी, आपके भीतर कितना कोमल हृदय है। आप सचमुच करुणेश हैं।' कह कर किरन ने दूसरे हाथ से पांडे जी की ठुड्डी पकड़ ली। फिर उसने उनके गालों पर उँगलियाँ रख कर जबड़े की हड्डियों को धीरे से दबा दिया। जरा सा मुँह खुला। उसने झट प्याला उडेल दिया।

'यह आपने क्या किया।' क्षोभ के साथ पांडे जी ने कहा।

प्याले में बची हुई बूँदें अपने मुख में डाल कर किरन ने कहा—

'कुछ नहीं, आपका प्रसाद पाकर मैं सुखी हुई, करुणेश जी।' कह कर किरन ने फिर प्याला भर लिया।

पांडे जी का सिर घूमने लगा। आँखें कुछ लाल हो गईं। उन्होंने कहा—

'सचमुच ? आप सुखी हुईं ? मुझे पिला.........।'

'ला' के साथ मुँह खुलते ही किरन ने झट दूसरा प्याला उड़ेल दिया और बोली—

'हाँ, आपको पिला कर मैं सुखी हूँ।'

किरणमाला ने फिर नाच कर एक गाना गाया। पांडे जी की आँखों में उन्माद भर गया। जो आँखें अब तक झुक-झुक जाती थीं, वे ही आँखें अब किरणमाला पर टिक गईं। उसकी आँखों से आँखें मिलाकर पांडे जी ने लड़खड़ाते हुये स्वर में कहा—

'तुम सचमुच किरणमाला हो, तुम किसके गले की माला हो ?'

'तुम्हारे।'

'सच ?'

'यह लो।'

कह कर किरन ने दोनों बाहें पांडे जी के गले में डाल दीं।

'यही स्वर्ग है क्या ?'

'हाँ, आप हैं इन्द्र, मैं हूँ उर्वशी और यह लीजिए अमृत।' कह कर किरन ने तीसरा प्याला पिला दिया।

टूटे फूटे स्वर में पांडे जी गाने लगे—

मेरी उच्छ्वासें इसका,
उर स्पन्दित कर लहराएँ।
ये आँखें इसके रस में,
मीनता-मयी मँडराएँ।

मेरे जीवन का यह कण,
इसके जीवन में लय हो।
जीवन की इस सन्ध्या में,
अति सुन्दर मधुर प्रलय हो।

गाते-गाते पांडे जी उसी सोफ़े पर सो गये। किरणमाला ऊपर के कमरे में गई। वहाँ दीपक जी उसकी माँ से कुछ बातें कह रहे थे। किरन ने मुस्कुरा कर पूछा—

'यह भोला कबूतर किस लिये फाँसा गया?'

'उसका भोलापन भगाने के लिये।' उसी तरह मुस्कुरा कर दीपक जी ने उत्तर दिया।'

—•०•—

(२)

मामेकं शरणं व्रज

अगले दिन चौपाटी पर बैठ कर पांडे जी अखबार देख रहे थे। उन्हें देखते ही दीपक जी ने कहा—

'आपने सवेरा भी न होने दिया, पांडे जी, रात ही में उठ कर भाग गये?'

'आँखें खुलते ही वहां से भाग निकला, दीपक जी, मेरी नोट-बुक लाये?'

'ला तो रहा था, लेकिन किरणमाला ने हाथ से छीन ली। उसने

कहा—पांडे जी अपनी नोटबुक लेना चाहते हैं तो स्वयं आकर ले जायँ। आपको बुलाने आया हूँ। चलिए।'

'चल तो रहा हूँ। लेकिन किरन के पास मुझे मत ले जाइए।'

'प्यासे को अंगूर का रस दिया जाय, और प्यासा उसे लात मार कर भाग जाय तो ऐसे प्यासे पथिक को आप क्या कहेंगे, पांडे जी ?'

'जो जिह्वा की गुलामी में न फँसे उसे समझदार ही कहेंगे, दीपक जी।'

'जिस प्रकृति ने हमें बनाया उसी प्रकृति ने अंगूर की लताओं का जाल किसलिये बनाया, पांडे जी ? क्या इसीलिए कि हरे पत्तों की सारी में लहलहाती हुई ये लुभावनी लताएँ अपने मधुकोष, अपने रसबिन्दु, अपने वक्षस्थल के मीठे मोती दिखा दिखा कर मनुष्य की प्यास बढ़ावें ? क्या इसीलिए कि मखमली गद्दे पर विशाल मांस-पिंड की तरह पड़े रहने वाले मोटेमल अपने पैसे के डंडे से इन लताओं का मान-मर्दन कर, इनका मधुकोष लूटकर, बाल्टियों में भर कर अपने घोड़ों के आगे डालते रहें और जीवों में सर्वोत्तम, जीवों का सिरमौर, प्रकृति का वर-पुत्र भूखा प्यासा, एक एक दाने के लिये, एक एक बूँद के लिये दूर से ही उन बाल्टियों को घायल कुत्ते की तरह टुकुर टुकुर ताकता रहे ?'

'ऐसी शंकाओं का उत्तर शताब्दियों पहले भर्तृहरि जी लिख गये हैं।'

'क्या लिख गये हैं ?'

'वह लिखते हैं—'पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वांछा।'

मोटेमल ने पिछले जन्म में जो पुण्य किये हैं उसे कौन मिटा सकता है ?'

'आप मिटा सकते हैं। आज रात ही भर में उनके और अपने सारे पिछले कर्मों को एक झटके में पलट सकते हैं। कल ही दुनिया यों कहने लगेगी—'मोटेमल को पाप का फल मिला। वह नरक के घाट उतार दिये गये।' साथ ही आप कानून की लपेट में न आये और पैसों का डंडा आपके हाथ आ गया, आप भी अपने गधों के सिर पर ताज रखने के लायक बन गये तो सारी दुनिया कहेगी—'करुणेश जी के आंगन में पुण्यों का कल्पवृक्ष फूल रहा है।'

'भर्तृहरि जी के कहे हुए सिद्धान्त के..............।'

'वे सिद्धान्त भोले-भाले प्राणियों को फुसलाने के लिये, उन्हें धोखा देने के लिये गढ़े गये थे। शीत से कांपते हुए भूखे प्राणी ने पूछा—'तुम कुछ नहीं करते, दिन रात मुलायम गद्दे पर पड़े रहते हो। तुम पर सुन्दरियां चँवर ढालती हैं। दासियाँ पान फूल, मेवा मिष्टान्न लिये सामने खड़ी रहती हैं। तुम साठ साल के जवान, मैं तीस साल का बूढ़ा, जवानी मैंने देखी ही नहीं, बचपन के बाद झट बुढापा आगया क्योंकि दिन भर के परिश्रम के बाद सांझ को पेट भर भोजन न मिला। इसका क्या कारण है ?' भर्तृहरि जी ने झट कह दिया—'पुण्यं कुरुष्व, पुण्य करो, आगे सुख मिलेगा।' बेचारा साधन-हीन कहाँ से पुण्य करता ? पुण्य भी तो हर्तृहरि जैसे राजे महाराजे ही कर सकते थे, जिनके पास विलास के और पुण्य कमाने के, सभी प्रकार के साधन थे। भोले-

भाले भूखे प्राणी को इस प्रकार न फुसलाया जाता तो वह साधन सम्पन्न लोगों की गर्दन पर चढ़ बैठता और सारे साधन उनसे छीन कर कहता—मुझे अपने पुण्यों का फल भोगने दो। तुम जाकर वन में तपस्या करो और पुण्य कमाओ।'

'भर्तृहरि की गर्दन पर कोई चढ़ने नहीं गया था, दीपक जी, सुख के साधनों को उन्होंने अपनी इच्छा से लात मारी थी।'

'अपनी इच्छा से, मजबूरी से नहीं। एक बार मेरे हाथों में भी उन साधनों को आजाने दीजिए, फिर चाहे उन्हें लात मारूँ चाहे आँखों में रक्खूँ, यह सब मेरी इच्छा पर छोड़ दीजिए।'

'विलास की प्यास कभी बुझ सकती है, दीपक जी? इसीलिए इसका दमन करने का उपदेश दिया गया है।'

'पानी की प्यास भी कभी बुझ सकती है, पांडे जी? इसका भी दमन कीजिए और जल्द से जल्द स्वर्ग पहुँचिए।'

'पानी की प्यास का दमन करने को नहीं कहा गया है। उसके बिना हम जी ही नहीं सकते। इसीलिये प्रकृति ने जलवायु और प्रकाश हमारे लिये सुलभ बनाये हैं।'

'इन सारी बातों का उत्तर दे सकता हूँ, किन्तु देर हो रही है। मुझे अपना व्यवसाय देखना है। इसलिए चलिये, आपकी नोट-बुक दिला दूँ।'

पांडे जी के साथ विक्टोरिया में बैठ कर दीपक जी किरनमाला के द्वार पर पहुँचे। दीपक जी सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। पांडे जी बाहर ही रुक गये।

'चले आइए।' दीपक जी ने कहा।

'क्षमा चाहता हूँ।'

'अपनी नोटबुक नहीं लेंगे ?'

'उसी के लिये तो आया हूँ।'

आवाज़ सुन कर किरणमाला सीढ़ी पर आ गई उसने कहा—

'नमस्कार पांडे जी, अपनी नोटबुक चाहते हैं तो ऊपर चले आइए।'

पांडे जी विवश थे। उन्हें ऊपर जाना पड़ा। उन्हें सोफ़े पर बैठाकर किरन ने कहा—

'आपकी कविताएँ मुझे बहुत पसन्द आईं। दो दिन के लिये अपनी नोटबुक मेरे पास छोड़ नहीं सकते ?'

'इस प्रशंसा के लिये धन्यवाद। जो कविताएँ आपको पसन्द हों, मैं लिख कर दे दूँगा।'

'कई एक पसन्द हैं। करुणेश जी का एक गीत सुनिए दीपक जी !

नोटबुक खोल कर किरनमाला गाने लगी—

''*क्यों सुख-नींद न सोता, चकवा, क्यों सुख-नींद न सोता ?*

नभ में चन्द्रमुखी निशि-बाला,

सर में जल-खग-पंकज-माला,

कमल-कोष में मधु-मतवाला,

सब सोते तूँ रोता, चकवा, क्यों सुख-नींद न सोता ?

फूल रही कुमुदिनि सरवर में,

झूल रही लतिका तरुवर में,

भूल रही पिकि पंचम स्वर में,

शूल तुझे क्यों होता, चकवा, क्यों सुख-नींद न सोता ?

'सचमुच, यह गीत हृदय को स्पर्श करता है।' दीपक जी ने कहा।

'क्या रक्खा है इस गीत में! यह तो किरणमाला के गले की मिठास है, जो हृदय को स्पर्श करती है।' पांडे जी ने कहा।

'आप तो मुझे लज्जित कर रहे हैं, पांडे जी।' किरणमाला ने कहा।

इसी समय कमरे में घंटी बज उठी। किरणमाला ने कहा—'अभी आती हूँ पांडे जी, जलपान करके जाइएगा। इन्हें रोकिएगा, दीपक जी, भागने न पावें।'

किरन भीतर चली गई। दीपक जी ने कहा—

'मुझे बड़ी ख़ुशी है, पांडे जी।'

'किसलिए?'

'इसलिये कि किरणमाला के गले की मिठास आपके हृदय को भी स्पर्श करती है।'

'शहद किसको कड़ुवा लगता है, दीपक जी?

'फिर भी आप उससे दूर भागते हैं।'

'जिसे पा न सकूँ उससे दूर ही रहना अच्छा है।'

'आप में बुद्धि और साहस हो तो आप सब कुछ पा सकते हैं।'

'बुद्धि और साहस का उपयोग एक सीमा तक ही हो सकता है, दीपक जी। कहीं न कहीं इनकी गति रुक जायगी, वहाँ सन्तोष का ही पल्ला पकड़ना पड़ेगा। सन्तोष में ही सच्चा सुख है।'

'बेवसी का ही दूसरा नाम सन्तोष है। सन्तोष वही करता है जिसका वश नहीं चलता। जिसका वश चलता है, जिसमें बुद्धि

और साहस है, वह तो सारे संसार का वैभव अपनी मुट्ठी में भर लेना चाहता है।'

'अभी मैंने कहा था कि प्रकृति ने जल-वायु और प्रकाश को सारे प्राणियों के लिये सुलभ बनाया है। इन पर कौन अपना अखंड अधिकार जमा सकता है, दीपक जी? जो मूर्ख इनको अपनी मुट्ठी में भर लेना चाहेगा, उसकी मुट्ठी फट जायगी।'

'इस विज्ञान के युग में ऐसी बात आप कैसे कह सकते हैं, पांडे जी? जल, वायु और प्रकाश की भाँति हमारे लिये अन्न भी सुलभ होना चाहिए था। जीवित रहने के लिये इसकी भी आवश्यकता है। अन्न, फल और मेवे भी प्रकृति ने हमारे ही लिये बनाये हैं। लेकिन पैसे वालों ने, बुद्धि और साहस वालों ने, और शक्तिशालियों ने इन पर अधिकार जमा लिया है। वे लोग इन्हें बोरियों में भर कर गोदामों में रख लेते हैं। एक ओर लाखों प्राणी एक-एक ग्रास के लिये तड़प-तड़प कर मरते रहते हैं दूसरी ओर उनका आहार गोदामों में सड़ाकर नदियों में बहा दिया जाता है। मनुष्यों का आहार लूट कर नष्ट कर डालने वाले नर पिशाच, अपने आपको सभ्य कहने वाले आदमख़ोर ऊँची अट्टालिकाओं में आसुरी हँसी-हँसते रहते हैं और बाहर उनके द्वार पर उनका अधमरा शिकार तड़पता रहता है। ऐसे अनाचार के समय, ऐसे संघर्ष के समय सन्तोष का सहारा लेकर आप नहीं जी सकते। ऐसे जीने से आत्म हत्या बेहतर है। जिस युग का सिद्धान्त है—जीवन के लिये संघर्ष, शक्तिमान ही जीने का अधिकारी—उस युग में सन्तोष का सहारा लेकर, भगवान की छाँह पकड़ कर आप

कब तक खड़े रहेंगे ? जल, वायु और प्रकाश अब तक इसीलिये सुलभ हैं क्योंकि अर्थलोलुप आदमखोर लोग इन पर अपना पूरा अधिकार न जमा सकें। कल कोई ऐसा यंत्र निकल आवे जिसके द्वारा संसार का सारा जल, सारी वायु और सारा प्रकाश समेट कर डिब्बों में बन्द कर लिया जाय तब तो आपको एक-एक साँस लेने के लिये मूल्य चुकाना पड़ेगा। '

'यह सब असम्भव है, दीपक जी, आपकी कल्पना की दौड़ है।'

'इस परमाणु युग में क्या सम्भव है क्या असम्भव, इसका निर्णय कोई भी समझदार सरलता से नहीं कर सकता। आप मेरी ही कल्पना की दौड़ देख रहे हैं ? जिनके हृदयों में, अर्थ संग्रह की प्यास दोज़ख की भट्ठी की तरह धधक रही है उनकी कल्पना की दौड़ शायद आपने नहीं देखी। जो व्यापारी यह सोच सकता है कि दुनिया भर में जितनी लौंग, जितनी काली मिर्च और जितनी शक्कर पैदा होती है सब की सब मैं ही ख़रीद लूँ फिर चाहे जिस भाव बेचूँ वही व्यापारी क्या यह नहीं सोच सकता कि दुनिया भर में जितनी वायु है सब को समेट कर मैं अपने गोदाम में भर लूँ फिर चाहे जिस भाव बेचूँ ?'

'व्यवसायी का मस्तिष्क ऐसा फालतू नहीं होता दीपक जी, जो व्यर्थ की बातें सोचे।'

'आप ग़ुलाम देश के रहने वाले हैं। यहाँ का व्यवसायी भी ग़ुलाम है। सम्भव है कि उसके मस्तिष्क में ऐसे विचार न आवें। लेकिन कौन जाने नई दुनिया के व्यापारी आज क्या सोच रहे हों। एक बार वहाँ जाकर लोगों को विश्वास करा दीजिए कि अपना

जीवन आप इस प्रकार की खोज में बिताना चाहते हैं, फिर तो आपके और आपके आश्रितों के भरण पोषण का भार कोई न कोई उठा लेगा और आपके लिये एक प्रयोगशाला सजा देगा। आप सारी ज़िन्दगी खोज करते रहिए। चाहे जितने रुपये ख़र्च हों, उसके लिये आपको कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। यदि आपकी खोज सफल हुई तो व्यापार के लिये न सही, नर-संहार के लिये एक ब्रह्मास्त्र तो मिल ही जायगा।'

'इतना तो आप सच कहते हैं, एक साथ ही लाखों प्राणियों को मार डालने वाला अस्त्र तैयार करने में वे लोग अधिक से अधिक धन नष्ट कर सकते हैं।'

'नष्ट नहीं करते, करुणेश जी, वे लोग ऐसे मूर्ख नहीं हैं जो धन को नष्ट करें।'

'जिस अस्त्र से एक हँसते-खेलते, फलते-फूलते, हरे-भरे नगर को पल भर में जली हुई चिता के समान उजाड़ मरुस्थल बना दिया जाय उस अस्त्र के बनाने में धन का कौन सा सदुपयोग हुआ, दीपक जी ?'

'इस ग़ुलाम देश का एक सूदख़ोर एक ग़रीब मज़दूर को थोड़े से रुपये देकर व्याज के बहाने मज़दूर के शरीर का सारा रक्त चूस लेता है। मज़दूर और उसके बच्चे सूखते सूखते सूख जाते हैं। उनकी झोंपड़ी उजड़ जाती है। उन्हें उजाड़ कर सूदख़ोर ने अपने धन का कौन सा सदुपयोग किया करुणेश जी ?'

'इससे सूदख़ोर के हाथ जायदाद आती है।'

'तो यह मानना पड़ेगा कि जायदाद की प्यास भी खून की प्यास है। वह मनुष्य को पिशाच बना देती है।'

'अवश्य ही।'

'आप ठीक राह पर आ रहे हैं। जहाँ एक बार मनुष्य को खून का स्वाद मिला फिर तो वह पिशाच दिन रात गर्म गर्म खून की ही खोज में फिरने लगता है। इतना ही नहीं, अपने शिकार को फाँसने के लिये अपने भगवान से भी सहायता माँगता रहता है।'

'फिर भी व्याज खाने वाले ने अपने धन के उपयोग से जायदाद कमाई। लेकिन प्रलयकारी अस्त्रों के बनाने वालों ने लाखों मनुष्यों को मार कर क्या कमाया ?'

'उन्होंने साम्राज्य कमाया करुणेश जी। जैसे व्यक्ति में जायदाद की प्यास होती है वैसे ही जाति में, नेशन में, साम्राज्य की प्यास होती है। इस गुलाम देश का सूदखोर एक मजदूर को अपना शिकार बनाता है, उसका रक्त चूस कर उसकी हस्ती मिटा कर, उसकी झोंपड़ी छीन कर अपनी जायदाद बढ़ाता है, जिससे बेटों और पोतों की संख्या बढ़ने पर उन्हें चैन की वंशी बजाने के लिये विलास के साधन पहले से सुरक्षित रहें। उसी तरह एक सबल जाति दूसरी निर्बल जाति को अपना शिकार बनाती है और विजित जाति को चूस कर, चबा कर, मिटा कर उसके घर पर, उसके देश पर अपना अधिकार जमाती है और अपना साम्राज्य तथा अपने उपनिवेश बढ़ाती है इसलिये कि आगे जो आबादी बढ़े उसके सुख का साधन पहले से ही सुरक्षित रहे। साम्राज्य की प्यास जायदाद की प्यास

का केवल विकसित रूप है। एक व्यक्तिगत प्यास है, दूसरी सामूहिक। दोनों प्यासें पिशाचिनी हैं, एक माँ है, दूसरी बेटी।'

'आपका कहना यथार्थ है।'

'यदि आप कल्पना की दुनिया से निकल कर असली दुनिया में खड़े हों, अन्धविश्वासों को छोड़ कर जीवन के प्रत्येक पहलू पर अपनी बुद्धि से सोचें तो आप भी यथार्थ कहने लग जायँगे।'

'इतनी बुद्धि मुझमें कहाँ, दीपक जी ?'

'मानता हूँ कि प्रत्येक में अपनी बुद्धि नहीं होती, इसीसे बाबा-पंथियों का बाहुल्य है। किन्तु आपमें स्वतंत्रतापूर्वक सोचने की क्षमता है।'

'बस इतनी ही क्षमता है कि रो पीट कर अपने आश्रितों के लिये रूखी-सूखी रोटी-दाल जुटा लेता हूँ।'

'इसका कारण यही है कि अपनी बुद्धि को आपने उपयोगी कार्य में नहीं लगाया।'

'कैसे लगाऊँ, दीपक जी ?'

'मैं बतलाऊँ ? आप स्वयं शिक्षक हैं, गुरु हैं।'

'गुरु हूँ लड़कों का, आपका नहीं।'

'यह तो केवल संयोग की बात है जो आप मेरे गुरु न हो सके। जब मैं पन्द्रह वर्ष का विद्यार्थी था, उस समय आप पचीस साल के गुरु रहे होंगे। अन्तर केवल इतना ही था कि मैं एक स्कूल में पढ़ रहा था, आप दूसरे स्कूल में पढ़ा रहे थे।'

'मेरी आयु भले ही अधिक हो, किन्तु बुद्धि और अनुभव में आप ही मेरे गुरु हो सकते हैं।"

"'तो लूँ आपकी परीक्षा ?'

'पाठ पढ़ाने से पहले ही ?'

'आप तो परीक्षा से पहले ही फेल हो गये। अब तक अर्जुन-गीता का पाठ जो आपने पढ़ा, वह आपकी समझ में कोई पाठ ही नहीं था ?'

'हाथ जोड़ता हूँ, गुरुदेव ! पास कर दीजिए।'

'तो सावधान हो जाइये, फिर परीक्षा ले रहा हूँ। इस अखबार को आपने पढ़ लिया ?'

'केवल पहला पृष्ठ।'

'बतलाइए पहले पृष्ठ पर आपने कौन सा उपयोगी समाचार पढ़ा है ?

'लड़ाई, भूचाल, हड़ताल और...........।'

'फिर फ़ेल हो रहे हैं। लड़ाई, भूचाल और हड़ताल की ख़बरें हमें क्या लाभ पहुँचाएँगी ? मैं तो उपयोगी समाचार पूछ रहा हूँ।'

'हमारे व्यक्तिगत उपयोग का समाचार तो कोई भी नहीं दीखता।'

'तो फिर आप फ़ेल हुए।'

'ऐसा क्यों ? पहले सही उत्तर तो दिखला दीजिए।'

'उत्तर तो स्वयं आपको देख रहा है।'

अख़बार में एक बच्चे का फ़ोटो छपा हुआ था। उससे नीचे एक विज्ञापन था। विज्ञापक थे अहमदाबाद के मिल मालिक सेठ माधवदास फूलचंद। एक दिन उनका इकलौता बच्चा स्कूल जाने के लिये निकला और स्कूल नहीं पहुँचा। तभी से ग़ायब है। जिसकी

सहायता से बच्चा मिल जाय उसके लिये पचास हज़ार रुपये का इनाम घोषित किया गया था।

'आपका अभिप्राय इस विज्ञापन से है ?' पांडे जी ने पूछा।

'अवश्य ही। जितनी शक्ति एक कविता लिखने में लगाते हैं उतनी ही शक्ति ऐसे व्यवसाय में लगाकर यदि आप सफल हो जायँ तो आपके दिन बदल जाँय। कन्याओं के भविष्य की चिन्ता भी आपको न सतावे।'

'यह विज्ञापन तो पहले भी कई बार आ चुका है। पहले हज़ार रुपये, फिर दस हज़ार, फिर पचीस हज़ार और इस बार पचास हज़ार का पुरष्कार घोषित किया गया है।'

'और आपने कभी इसकी ओर ध्यान न दिया !'

'मेरे ध्यान देने से क्या होता ? इस पुरष्कार को पाने के लिये पुलिस वाले न जाने कब से सिर खपा रहे होंगे।'

'पुलिस वाले तो पहले ही मुट्ठी गरम कर चुके होंगे। आइए हम आप मिलकर इस पुरष्कार को पाने का प्रयत्न करें।'

पांडे जी ने दीपक जी की ओर आश्चर्य से देखा। खोई हुई वस्तु का पता लगाने में दीपक जी बड़े सिद्ध-हस्त प्रतीत हुए। खोई हुई नोटबुक भी तो उन्होंने ही खोज निकाली।

'मैं नहीं, आप सचमुच इस व्यवसाय में सफल हो सकते हैं। यह तो आपकी उदारता है जो मुझे अपने लाभ में साझी बनाना चाहते हैं।'

'लाभ में ही क्यों ? हानि में भी साझीदार बनना पड़ेगा।'

'हाँ, ऐसी भी सम्भावना हो सकती है कि सैकड़ों रुपये बच्चे की खोज में लग जायँ, फिर भी पता न चले।'

'रुपयों की चिन्ता न कीजिए, इससे कहीं अधिक हानि की सम्भावना मुँह बाये बैठी है।'

'वह क्या?'

'जेल की।'

'कैसे?'

'जिसने आपकी नोटबुक का पता लगाया उसे आप जेल भी भेज सकते थे, इसे भूल गये?'

'यह सम्भावना बड़ी भयानक है।'

'इस भयानक सम्भावना का सामना करने के लिये आप में साहस है?'

'इतना तो बतला दीजिए कि मुझे क्या करना होगा। बच्चे को खोज निकालना मेरे वश की बात नहीं दीखती।'

'बच्चे को खोजने का भार भी आप पर नहीं लादूंगा। जेल को ससुराल समझने के लिये आप तैयार हैं या नहीं? इतना ही सोच लीजिए।'

पांडे जी का मुख पीला पड़ गया। जैसे अभी उनके हाथ में हथकड़ी पड़ रही हो। दीपक जी ने मुस्कुरा कर कहा—

'यही आपका साहस है? जेल का नाम सुनते ही डर गये? वीर-भोग्या वसुन्धरा, दुनिया उन्हीं के लिये है जिनमें बुद्धि और साहस है, जो जेल और फाँसी को खेल समझते हैं।'

'जेल और फाँसी से नहीं डरता, दीपक जी, मैं न रहूँ तो मेरे अनाथ आश्रितों पर कैसी बीतेगी ? यही चिन्ता सताती है।'

'इस चिन्ता को अभी समाप्त कर सकता हूँ।'

मिठाइयाँ लिये किरणमाला कमरे में आई।

'ज़रा रुको किरन, काम की बातें कर रहा हूँ। शायद ऊपर ही आकर हम लोग जलपान करें।'

किरन ने सन्देह भरी आँखें दोनों पर डालीं। दीपक जी ने उसका भाव समझ लिया और कहा—

'कोई डर नहीं है। तुम जाओ।'

किरन चली गई। दीपक जी फिर पांडे जी से बोले—

'व्यवसाय भी जुए का खेल है, कभी हार कभी जीत। व्यवसाय बिगड़ जाने पर कभी कभी लखपती को भी जेल जाना पड़ता है। फिर भी अपने व्यवसाय में मैं बहुत सावधान रहता हूँ। सारा काम ऐसे ढंग से होगा जिसमें कोई ख़तरा न हो। अगर कहीं दलदल में किसी साथी का पैर पड़ ही गया तो उसे बचाने के लिये जान लड़ा दूँगा।'

'आप ही फँस जाँय, तब क्या होगा ?'

'मैं तभी फँसूँगा, जब मेरा साथी मुझे फँसाना चाहे। लेकिन आज तक मेरे किसी साथी ने मेरे साथ विश्वासघात नहीं किया। आप भी मेरे व्यवसाय में सहयोग दे सकें तो साल भर में आप जो कुछ कमाते हैं उतनी रक़म मुझसे पेशगी ले जायँ और अपने आश्रितों को देकर कुछ दिनों के लिये निश्चिन्त हो जायँ।'

'मैं यही नहीं समझ पाया कि मुझे क्या करना होगा।'

'वचन दे चुकेंगे तब सब कुछ बतला दिया जायगा '

'वचन देने पर वह कार्य मेरी सामर्थ्य से बाहर सिद्ध हुआ तो ?'

'वह कार्य बड़ा सरल होगा। आप कार में बैठे रहेंगे। शहर से बाहर एक सूनी जगह में कार रुकेगी। कार से पाँच गज़ के फ़ासले पर एक थैली पड़ी होगी। प्रायः पन्द्रह सेर उसका वज़न होगा। उसके आस पास कोई भी नहीं होगा। आप कार से उतरेंगे और इस थैली को लेकर कार में बैठ जायँगे।'

'उस कार में आप भी होंगे ?'

'जब तक आप काम करने की प्रतिज्ञा नहीं कर लेंगे इससे आगे कुछ भी नहीं बतला सकता।'

'मैं तो आपको गुरु मान चुका हूँ. जो कहिएगा करूँगा।'

'ठीक, सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज। तो काग़ज़ पेन्सिल उठा लीजिए। उस विज्ञापन का उत्तर बोलता हूँ, आप लिखिए।'

पाँडे जी काग़ज़ पेन्सिल लेकर बैठ गये। दीपक जी बोलने लगे—

'बोरीविली से पाँच मील उत्तर, सड़क के किनारे नारियल का बाग़, बाग़ में पीपल का पेड़, उसके नीचे टूटा हुआ छोटा सा मंदिर जून की पन्द्रह तारीख़ को प्रातः पाँच बजे एक थैली में सोने के पचास पासे रख दीजिए। उसी स्थान पर उसी दिन ठीक तीन घन्टे बाद आपको माल मिलेगा। आठ बजे से पहले माल लेने न जायँ। हम आपसे कम चालाक नहीं हैं। आप हमें धोखा नहीं दे सकते। सौदा करने का यह आख़िरी मौक़ा दिया जा रहा है। जी चाहे तो

साफ़ नियत से सौदा कर लीजिए। फिर आपने नियत बिगाड़ी तो एक झटके में माल का सफ़ाया कर दिया जायगा। आपकी उम्मीदों का चिराग़ हमेशा के लिये बुझ जायगा। १४ जून से पहिले इस चिट्ठी की मंजूरी अख़बार में इस तरह छपनी चाहिए—'मुँह माँगा इनाम दिया जायगा।'

'इनके साथ पहले से ही आपका पत्र-व्यवहार चल रहा है !'

'ये लोग बड़े धूर्त हैं, लेकिन दीपक जी की आँखों में धूल नहीं डाल सकते।'

'पिछले पत्र आपने अपने हाथ से लिखे थे ?'

'जिन हाथों ने पिछले पत्र लिखे थे, उन्हीं हाथों से यह पत्र भी लिखा जायगा। आप चिन्ता न कीजिये। आपका हस्ताक्षर नहीं भेजूँगा। केवल इसकी नक़ल जायगी।'

'अब बतलाइये, इस व्यवसाय में कितने साझीदार हैं ?'

'अब तक तीन थे, अब चार हो गये।'

'आप, मैं, दो और कौन ?'

'किरन और उसकी माँ।'

'यह लोग इतना बड़ा व्यवसाय चला रही हैं ?'

'आश्चर्य क्यों ? इतना बड़ा व्यवसाय अब तो आप भी चला रहे हैं। फिर भी इस काम में मुख्य भाग इन्हीं लोगों का है।'

'मेरी कार आप चलावेंगे ?'

'मैं तो आप से घन्टा भर पहले वहाँ पहुँच जाऊँगा, यह देखने के लिये कि पिछली बार की तरह कहीं चूहों पर झपटने के लिये

झाड़ी में बिल्ली तो नहीं बैठी है। अगर कहीं खतरा दिखाई पड़ा तो मैं इशारा करूँगा।'

'क्या इशारा करेंगे ?'

'छोड़िए इस विषय को, इशारे को क्या, आप तो मुझे भी नहीं पहचान सकेंगे।'

'फिर खतरे की सूचना मुझे कैसे मिलेगी ?'

'खतरे की सूचना किरन को मिल जायगी। वह मेरे इशारों को पहचानेगी।'

'मेरे साथ वह भी जायगी ?'

'हाँ, वही आपकी कार चलायेगी।'

'किरणमाला ड्राइवर भी है ?'

'अपना काम निकालने के लिये इस प्रकार की बहुतसी बातें उसे सिखा चुका हूँ।'

'अपने लिये उसे इतना उपयोगी बनाकर भी आपने उसके साथ व्याह नहीं किया ?'

'किस किसके साथ व्याह करता ? बहुतों को उपयोगी बना चुका हूँ। अब आपकी बारी है। किरन के साथ मेरा केवल व्यवसायिक सम्बन्ध है। उसका बाप किसी फ़िल्म कम्पनी में केमरा-मैन था लेकिन मरते समय शराब के बिल के सिवा परिवार के लिये उसने कुछ न छोड़ा। बेचारी फ़िल्म कम्पनियों में नौकरी ढूँढ़ती फिरती थी। मैंने उसे अपने व्यवसाय में साझी बना लिया।

'चलिये, ऊपर चलें, वह प्रतीक्षा कर रही होगी।'

'एक बात और बतलाइए, किसी ने कार के नम्बर नोट कर लिये तो ?'

'ऐसी छोटी-छोटी बातें कहाँ तक बतलाता रहूँगा ? व्यवसाय चलाते एक युग बीत गया। आप निश्चिन्त रहें।'

'बस यही एक बात बतला दीजिए, और कुछ न पूछूँगा।'

'तो आपकी ही परीक्षा लूँ, बतलाइए आप नम्बर को कैसे छिपाते ?'

'नम्बर को निकाल कर अलग रख देता।'

'फिर फ़ेल हुए। यह नहीं जानते कि बिना नम्बर की गाड़ी दिखाई पड़ते ही पकड़ी जायगी ?'

'तो किसी दूसरी कार का नम्बर रखिएगा ?'

'कौन देगा ? सीधी-सी बात है, तेल-पानी में कपड़े को गीला कीजिए और उसी से नम्बर के प्लेट को पोंछ दीजिए, फिर उस पर धूल झाड़ दीजिए, दूर से पुलिस का बाबा भी उसे न पढ़ सकेगा।'

'आप लोगों की बातें पूरी हुईं या नहीं ?' किरणमाला ने आकर पूछा।

'ऊपर चलिए, पांडे जी।' दीपक जी ने कहा।

पांडे जी को साथ लेकर किरणमाला के पीछे-पीछे दीपक जी ऊपर पहुँचे। एक ओर पचासों खिलौनों का ढेर लगा था—रेल-गाड़ी, हवाई जहाज, गेंद, कई प्रकार के बाजे, लकड़ी, रबड़ और गटापार्चे के बच्चे, बन्दर, तोते, इत्यादि।

इस कमरे से सटे हुए दूसरे कमरे में पलँग पर बैठा हुआ सात

आठ साल का बालक एक अधेड़ स्त्री के साथ ताश खेल रहा था। पलँग की बगल में मेज पर लकड़ी के रंगीन टुकड़ों का दो मंजिला मकान शायद उसी ने बना रक्खा था। पत्ते समेट कर उसने बड़े आह्लाद के साथ कहा—

'किरन जीजी, मौसी को फिर हरा दिया।'

'अम्मा को मैं भी हरा देती हूँ। आओ, एक नया खिलाड़ी दिखाऊँ। इनको हराओ और मुझसे इनाम लो।'

बालक हिरन की तरह कूद कर किरन के पास आया और पांडे जी की ओर देखने लगा। पांडे जी ने आश्चर्य के साथ बालक की ओर देखा, फिर अखबार में छपे हुये चित्र पर दृष्टि डाली। उसी दम दीपक जी ने अखबार को मोड़ कर चित्र छिपा दिया।

'तुम ताश ही खेलते हो या कुछ पढ़ते-लिखते भी हो?' पांडे जी के साथ सोफ़े पर बैठते हुये दीपक जी ने कहा।

'कई बार तो आप डिक्टेशन लिखा चुके हैं, फिर बोल कर देख लीजिए।'

'अच्छी बात है। देखो यह मास्टर साहब हैं। तुम्हारा इम्तहान लेंगे। तुम्हें डिक्टेशन लिखाएँगे।'

'जो एक भी ग़लती न हुई तो?' बालक ने पूछा।

'तो इस बार पनडुब्बी जहाज़ दूँगी।' किरन ने कहा।

रकाबियों में नमकीन और मिठाइयाँ लेकर किरन आई। कागज़, कलम और दवात लेकर बालक आया। दीपक जी का संकेत पाकर पांडे जी ने अपनी जेब से डिक्टेशन का पर्चा निकाला और बोले—लिखो, बोरीविली से पाँच मील उत्तर, इत्यादि।

इम्तहान के साथ-साथ जलपान भी चलता रहा। दोनों काम साथ ही समाप्त हुआ।

'वाह, सब ठीक है।' पांडे जी ने परीक्षा-फल सुना दिया।

'अभी नहीं, इस लिफ़ाफ़े पर अपने घर का पता लिख कर मास्टर साहब को दिखाओ।' दीपक जी ने लिफ़ाफ़ा पकड़ा कर कहा।

बालक ने पता भी लिख दिया। उसे भी पांडे जी ने ठीक बतलाया। किरन ने पनडुब्बी जहाज़ देने की प्रतिज्ञा दुहराई।

नीचे के कमरे में पहुँच कर पांडे जी ने कहा—

'हम चारों को इस बालक ने पहचान लिया है। यहाँ से छूटते ही इसने हमें पकड़ा दिया तो?'

'इस सौदे में भारी लाभ की सम्भावना है। पचास हज़ार का सोना हाथ आते ही कुछ साल के लिये बम्बई छोड़ दूँगा।'

'कहाँ जायँगे?'

'किरन कलकत्ता चली जायगी। मैं आपका मेहमान होकर बनारस चलूँगा।'

'नोट बुक लेने के लिये कब आइएगा पांडे जी?' किरन ने आकर पूछा।

'कल सायंकाल फिर आवेंगे।' दीपक जी ने उत्तर दे दिया।

बाहर निकलते हुए दीपक जी ने कहा—

'मेरा स्थान आप देखना चाहते थे, चलिए दिखा दूँ।'

तीन चौराहे पार कर दीपक जी अपने स्थान पर पहुँचे। उन्होंने कमरे में बिजली जलाई। एक मेज़ और दो कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं।

इससे भीतर एक और कमरा था। उसमें एक पलंग पड़ा था। पांडे जी को बैठा कर दीपक जी आलमारी खोलने लगे। पलंग के पास ही एक बन्द दरवाजा था। उसके भीतर से हल्की-हल्की आवाज आ रही थी। ऐसा जान पड़ा जैसे कुछ लोग बातें कर रहे हों।

'इधर क्या हो रहा है, दीपक जी।' पांडे जी ने पूछा।

'देखिएगा?' बोतल निकाल कर दीपक जी ने मेज़ पर रक्खी और द्वार खोल दिया। आँगन दिखाई पड़ा। आँगन में से होकर पांडे जी के साथ दीपक जी एक कमरे में पहुँचे। यहाँ कुछ लोग फ्लश खेल रहे थे। दूसरे कोने में भूत जैसे दो व्यक्ति बैठे थे। उनके सामने एक बोतल और काँच की दो गिलासें पड़ी थीं। चीनी के प्लेट में कुछ खाने का सामान भी रक्खा था। पांडे जी को देखते ही उनमें से एक उठा। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे।

'आइए, भाईजान, आइए।' लड़खड़ाती हुई आवाज में वह बोल उठा। सच्चे स्नेह और सौहार्द के साथ उसने पांडे जी का हाथ पकड़ लिया। उसके मुख से शराब की गंध आ रही थी। हाथ छुड़ा कर पांडे जी लौट गये। अपने कमरे में आकर दीपक जी ने कहा—

'अपना व्यवसाय चलाने के लिये सभी प्रकार के लोगों से काम लेना पड़ता है, पांडे जी।'

'अपना व्यवसाय आप बदल नहीं सकते?'

'इस व्यवसाय को बुरा नहीं समझता। अमीर गरीबों का शिकार करता है, डाकू अमीरों का शिकार करता है। अन्तर इतना

ही है कि अमीर के हाथ में सोने का छुरा होता है और बेचारा डाकू लोहे का छुरा पकड़ता है। क़ानून सोने के छुरे पर शान चढ़ाता है और लोहे के छुरे को तोड़ने के लिये तैयार रहता है।'

'फिर भी ऐसे भयानक भूतों से आप को अलग देख कर मुझे सन्तोष होगा।'

'यदि ये भयानक भूत हैं तो मैं हूँ भूतनाथ।'

'मैं चाहता हूँ कि भूतनाथ न बनकर मनुष्य ही बने रहते, इन्हें भी मनुष्य बनाते।'

'मैं क्या बनाऊँगा, मनुष्य को बनाती हैं परिस्थितियाँ और परिस्थितियों को बनाता है समाज। समाज की नकेल इने गिने शक्तिशाली लोगों के हाथ में होती है। ऐसे ही शक्तिशाली लोग परिस्थितियों का खेत तैयार कर उसमें पैशाचिक स्वार्थों का बीज बो देते हैं। उस विषैले बीज से पौधा फूट निकलता है। उस पौधे का विषैला फल खाने के लिये बेचारा भोला भाला निर्बल प्राणी विवश हो जाता है। उसे खाकर कभी अकाल ही मर जाता है, कभी हम जैसा भयानक भूत बन जाता है। एक ही कुटुम्ब में कुछ लोग मेवा-मक्खन खायँगे तो दूसरा भूखा नहीं रह सकता। भूखा रहने वाला कभी चुरा कर और कभी लूट कर खा लेगा। वही चोर और डाकू कहलाने लगेगा। समाज भी एक कुटुम्ब है उसका प्रत्येक व्यक्ति खाने पीने और जीने का अधिकारी है। समाज के बच्चे-बच्चे को शारीरिक और बौद्धिक विकास का समुचित साधन मिलना ही चाहिये।'

'मेरा अनुभव कुछ और कहता है, दीपक जी, एक ही सम्पन्न

पिता के दो पुत्र एक ही कक्षा में पढ़ते हैं। विकास का साधन और अवसर दोनों को एक सा मिलता है, फिर भी एक भीमकाय और बलवान बन जाता है, दूसरा क्षीणकाय और दुर्बल। परीक्षा में एक सब से ऊँचा स्थान प्राप्त करता है, दूसरा उसी कक्षा में बार-बार फ़ेल होता है। और भी देखिए, एक ही क्यारी में अनेक पौधे उगते हैं। सब को बराबर खाद पानी और प्रकाश मिलता है फिर भी एक सूख जाता है, दूसरा निर्बल रह जाता है और तीसरा लहलहा उठता है। इससे तो यही प्रगट होता है कि प्रकृति सबको समान रूप से विकसित नहीं करना चाहती।'

'प्राणी के विकास में प्रकृति-जनित भिन्नता तो रहेगी ही लेकिन समाज के ठेकेदारों ने स्वार्थ-वश जो रुकावटें लगा रक्खी हैं वे हटनी चाहिएँ। विकसित होने से पहले किसी पौधे या प्राणी के सम्बन्ध में हम नहीं जान सकते कि कौन किस हद तक विकसित होगा। यह सोचकर कि एक चीफ़ जस्टिस होगा और दूसरा केवल पानीपांडे बन सकेगा, कोई पिता एक बेटे को गेहूँ की और दूसरे को बाजरे की रोटी खिलाने लगे तो क्या यह उचित होगा?'

'आप कहते तो ठीक हैं फिर भी आपका यह भयानक व्यवसाय मुझसे नहीं देखा जाता दीपक जी।'

'आप मेरे लिये दुखी हो रहे हैं, मैं तो मस्त रहता हूँ। बल्कि आपकी दशा सचमुच दयनीय है।'

'ऐसी दयनीय दशा वाले मुझ जैसे लाखों प्राणी हैं, दीपक जी, उन्हें क्यों नहीं सुखी करते?'

'जिस हद तक कर सकता हूँ, कर रहा हूँ।'

'यह हद बहुत संकुचित है। ढंग भी भयानक है। सचमुच किसी जन-समुदाय को आप सुखी करना चाहते हैं तो इसके लिये त्याग और अहिंसा को ही अपना अस्त्र बनाना पड़ेगा।'

'आप तो त्याग और अहिंसा का पाठ पढ़ाने लगे। चेला बनते-बनते गुरु बनने लगे।'

'आप का गुरु बनने की स्पर्धा मैं स्वप्न में भी नहीं कर सकता, फिर भी एक कहावत याद आती है।'

'कौन सी कहावत ?'

'गुरू गुड़ और चेला चीनी।'

'कैसे ?'

'गुरु केवल सिखा सकता है, कर नहीं पाता, किंतु चेला सिखाता नहीं, कर ही डालता है। इतिहास इसका साक्षी है।

'वह साक्ष्य भी दे डालिए।'

'दादा जी कोणदेव केवल सिखाना ही जानते थे, किन्तु शिवाजी ने सिखाया नहीं, उन्होंने कर ही डाला।'

'छोड़िए इन बातों को, न तो आप कोणदेव बन सकते हैं, न मैं शिवाजी बन सकता हूँ। परिस्थितियाँ जैसा बना रही हैं, वैसा बनने दीजिए।'

'आप में बुद्धि है, साहस है, क्षमता है, सफलता है। आप क्यों नहीं परिस्थितियों पर प्रहार करते ? आप चाहें तो समाज के संगठन को बदल सकते हैं।'

'समाज का ठेकेदार मैं नहीं हूँ, पांडे जी। आप भी इस चक्कर

में न पड़ें। खाइए, पीजिए और मस्त रहिये। बोलिए क्या मगाऊँ आपके लिए?'

बोतल खोल कर दीपक जी प्याली भरने लगे।

'देर हो गई है, आज्ञा दीजिए, चलूँ।'

'भोजन करके जाइए।'

'कल आपके साथ भोजन करूँगा, आज जाने दीजिए।'

'जून की पन्द्रह तारीख़, याद रखिएगा।'

'याद रहेगी।' कह कर पांडे जी चले गये।

—:o:—

(३)

यह तितली कौन !

दीपक जी का व्यवसाय सफल हुआ। वह पांडे जी के साथ बनारस आकर रहने लगे।

पतली धोती के साथ सिल्क का कुर्ता पहने हुये आइने के सामने खड़े होकर घुँघराले बालों पर कंघी चला रहे थे। तब तक पांडे जी आ पहुँचे। कपड़े उतारते हुए उन्होंने पूछा—

'किधर की तैयारी है?'

'चलिये, चौक चल रहा हूँ।'

'अभी तो प्रेस देख कर आ रहा हूँ। जलपान कर चुके?

'किये लेता हूँ।'

कंघी रख कर दीपक जी ने बोतल निकाली और काँच की प्याली भर कर कहा—

'जलपान की जरूरत तो आप को है। दिन भर के थके थकाए आप चले आ रहे हैं। लेकिन आपको पिलावे कौन! किरन तो कलकत्ता गई। उसे बुलाऊँ क्या ?'

'पीने से पहले ही बहकने लगे ?'

'हम वह कमजर्फ नहीं जो कि बहकते जावें। आप पूरी बोतल पिलाकर देख लीजिए। मुझे तो आपकी प्यास का ध्यान है। किरन को लिखूँ तो जरूर चली आवेगी। वही आपकी प्यास बुझा सकती है।'

'विनोद छोड़िए, दीपक जी, काम की ओर भी कुछ ध्यान दीजिए।'

'काम ही की ओर ध्यान देने जा रहा था। आप ही ने जलपान की बात छेड़ दी। (प्याली पीकर) लीजिए, पी चुका। अब जाऊँ ?'

'कहाँ ?'

'पहले चौक, फिर दशाश्वमेध गंगा के घाट पर, फिर नाव में, कहाँ-कहाँ बताऊँ ? आप साथ चल कर देख लीजिए।'

'प्रेस के मालिक से मेरी बातें हुई हैं। मकान सहित सारा प्रेस बीस हजार में मिल जायगा। जमा जमाया काम है, एक बार देख लीजिए।'

'इतनी फ़ुरसत कहाँ है, पांडे जी ! सोना आपके घर में है, प्रेस ख़रीदिए, 'आलोक' निकालिए, चाहे अन्धकार फैलाइए। मुझे

इसमें मत वसीटिए। मेरी राय पूछते हैं तो सोना देकर लोहा लक्कड़ लेना मुझे नहीं जँचता।'

'सोना कितने दिन चलेगा ?'

'बस, यही सोचना दुख का मूल कारण है, पांडे जी। इसी रोग से आपके बाल अकाल ही सफ़ेद हुए जा रहे हैं। शेर कभी यह सोचता है कि जंगल में हिरनों का भंडार कब तक भरा रहेगा ? हिरन कभी यह सोचता है कि वन की हरियाली कितने दिन चलेगी ?'

'लेकिन हम मनुष्य हैं।'

'इसीलिए हमें पशुओं से अधिक सुख मिलना चाहिए। घर में सात सेर सोना है, जितना सुख मिले लीजिए। तब तक दूसरा शिकार मार लाऊँगा।'

'फिर वही भयानक बात ?'

'शिकार करना भयानक बात है ! प्रकृति महारानी से पूछो, कविवर, जिनका सारा साम्राज्य शिकारियों से भरा पड़ा है। मकड़ी मक्खी का शिकार करती है, छिपकली मकड़ी का, साँप छिपकली का, और मोर साँप का शिकार करता है। इक्केवान घोड़े का, पूँजी-पति मजदूर का, राजा और राजकर्मचारी भोली-भाली निर्बल प्रजा का शिकार करते हैं। सबल जातियाँ निर्बल जातियों का, और बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों का शिकार करते हैं। बड़े ही क्यों ! जिनको खून पीने वाले मच्छर की तरह चुटकियों में मसल दिया जाय ऐसे छोटे छोटे राष्ट्र भी एक बार हाथ में मशीनगन आ जाने पर हाथी जैसे विशालकाय किन्तु निहत्थे राष्ट्रों का शिकार कर डालते हैं।

प्रकृति डंके की चोट कर के कह रही है करुणेश जी, वही जी सकेगा जो शिकार करना जानता है। सृष्टि के आदि काल में, इसी भूमंडल पर हाथी से भी बड़े जानवर थे किन्तु वे रक्त पीने वाले नहीं थे, वे शिकारी नहीं थे, इसीलिए नष्ट हो गये। आज उनकी हड्डियाँ ही शेष हैं और अजायब घरों में देखी जा सकती हैं। लेकिन खून पीने वाला शेर अपने तेज नाखून और तेज दांत की बदौलत आज भी दहाड़ रहा है। उसे कोई नहीं मिटा सका। हाथी के डोल-डौल के सामने शेर आज भी बच्चा ही लगता है, करुणेश जी, लेकिन उसी बच्चे की एक दहाड़ में पहाड़ जैसे हाथियों की घटा फट जाती है, केवल इसीलिये कि प्रकृति ने हाथी की लम्बी सूँड़ में ऐसे दांत न दिये जैसे मगर के मुँह में होते हैं। प्रकृति ने उसे खून पीने वाला नहीं बनाया, तभी तो मनुष्य भी उसकी पीठ पर पैर रख लेता है। शेर आज भी आज़ाद है। उसकी पीठ पर पैर क्या, कोई उसकी पूँछ भी नहीं छू सकता। क्यों? क्योंकि वह शिकारी है। प्रकृति के सारे जीव शिकारी हैं। मनुष्य भी एक जीव है। बिना शिकार किए वह जी नहीं सकता। सच तो यह है कि इन्सान आज भी हैवानियत की सतह से ऊपर नहीं उठा है। जैसे मनुष्य अपने आपको सभ्य कहता है वैसे पशुजगत भी अपने आप को सभ्य कहता है आप उससे पूछ लीजिए। बड़े बड़े सिद्धान्त, मंदिर मस्जिद, गिर्जे, वैज्ञानिक आविष्कार, सभ्यता के सारे प्रतीक, सब जाल हैं शिकार को फाँसने के लिये। इसलिये बोलिए—शिकार जिन्दाबाद, शिकारी जिन्दाबाद, हैवानियत जिन्दाबाद।'

अन्तिम शब्द कहते ही दीपक जी तीर की तरह निकले और

सीधे चौक पहुँचे। आइने के सामने खड़े हुए। चाँदी का वर्क़ चढ़ा हुआ बीड़ा मुँह में डाल रहे थे, तब तक टोकरी लिये एक बुड्ढी बोल पड़ी—

'आज जुही की लाई हूँ, बाबू, आपके लिए।' कहकर उसने माला पहनाई। दीपक जी ने चवन्नी दी।

'गंगा माई, विश्वनाथ बाबा, भैया की जवानी बनाये रक्खें।' कहती हुई बुड्ढी चली गई।

आँखों की पिस्तौल में काजल की बारूद भर कर किसी ने ऊपर की खिड़की से देखा, बनारसी सांड़ की तरह सड़क पर फिरने वाले इस शिकारी को शिकार बनाने के लिये। लेकिन बीच में एक तांगा आ गया। इसलिये शिकार निशाने पर न आ सका। जोर्जेट की सारी पहने कोई देवी जी तांगे में बैठी चली जा रही थीं। दीपक जी की आँखें खिड़की पर न पड़ कर तांगे पर पड़ गईं।

'आज किधर चलना होगा, बाबू?' रिक्शा क़ुली ने पूछा।

'दीपक जी रिक्शे में बैठ गये। ताँगे की ओर उँगली उठा कर कहा—'इधर।'

अभी अन्धेरा नहीं हुआ था, फिर भी सड़क पर बिजली के बल्ब जल उठे। आगे-आगे ताँगा उसके पीछे रिक्शा दौड़ने लगा।

देवी जी की शान्त और सरल आँखें दो बार उठीं और पीछा करने वाले की ओर ताक कर झुक गईं। लेकिन दीपक जी की मस्त आँखें देवी जी पर जम गईं। खिड़की से निहारने वाली विवश आँखें देवी जी को कोस कर रह गईं।

दीपक जी के जाने के बाद पांडे जी भी बाहर निकले। सौदा पक्का करके रात में घर आये। भोजन तैयार था। केवल दीपक जी के आने की देर थी। राह देखते-देखते आधी रात बीत गई। दीपक जी न आये। पांडे जी ने अकेले भोजन किया। सवेरा भी हो गया पर दीपक जी न आये, पता लगाने के लिये पांडे जी निकल रहे थे तब तक सेवा-सदन का चपरासी सामने आया।

'पांडे जी आपही हैं ?' उसने पूछा।

'कहिए।' पांडे जी ने कहा।

'आपके मित्र दीपक जी अस्पताल में हैं।'

चपरासी के साथ ही पांडे जी सेवा-सदन पहुँचे। दीपक जी को देखा। सिर, पैर और हाथ पर पट्टियाँ बँधी हुई थीं। पांडे जी ने दीपक जी से कोई बात नहीं की, ऐसा ही डाक्टर का आदेश था। डाक्टर से ही बातें करके पांडे जी चले आये। सातवें दिन स्वस्थ होकर दीपक जी घर आये।

'वह दुर्घटना हुई कैसे ?' पांडे जी ने पूछा।

'आप को सूचना मिली कैसे ? मेरा नाम, आपका पता, मेरा और आपका सम्बन्ध लोगों को कैसे मालूम हुआ ? यह सब अब तक न जान सका।' दीपक जी ने कहा।

'आपने ही तो बतलाया था।'

'मुझसे किसी ने पूछा ही नहीं।'

'पूछा तो था, आपने बेहोशी में बतलाया होगा।'

'तो वह स्वप्न नहीं था ! अब तक उसे स्वप्न ही समझ रहा था।'

'किसे ?'

'एक तितली उड़ी जा रही थी। जी में आया पकड़ लूँ। वह थी तांगे में। रिक्शे में बैठ कर उसके पीछे चला। कुछ दूर जाने के बाद आगे से कार आई और पीछे से इक्का। मेरा रिक्शा इक्के से टकरा गया फिर मुझे होश नहीं कि क्या हुआ। होश आने पर मैंने अपने आपको पलंग पर पाया। वही तितली मेरे सीने पर हाथ रक्खे खड़ी थी। आँखें न खुलतीं तो अच्छा था। मुझे निहारते देखकर वह कमरे से बाहर निकल गई। सारा शरीर शिथिल हो रहा था। अपना हाथ भी भारी लगता था। उसे किसी प्रकार सामने लाया। घड़ी देखी। एक बज रहा था। लेटे ही लेटे चारों ओर आँखें दौड़ाने लगा। फिर वही तितली आई। उसके एक हाथ में थर्मस और दूसरे हाथ में प्याली थी। कुछ पूछने के लिये मुँह खोल ही रहा था कि मीठा-मीठा गर्म-गर्म दूध गले तक पहुँच गया। एक प्याली पिलाकर दूसरी प्याली वह भर रही थी, तब तक मैं बोला—

'मेरे लिये आपने तकलीफ़ उठाई !'

'बोलने से तकलीफ़ बढ़ेगी, आपकी भी और दूसरों की भी। दूध पीकर चुपचाप सो जाइए।' उसने कहा। वह मुँह में दूध डालती गई। बिना कुछ कहे बच्चे की तरह मैं पीता गया। पाँच प्याली पीकर उसका हाथ रोक दिया। मेरा नाम और पता पूछ कर वह ग़ायब हो गई। फिर उसे नहीं देखा। इसी से कुछ भी निश्चित न कर पाया कि वह घटना थी या स्वप्न था।'

'अच्छा हुआ जो वह आपको फिर न दिखाई पड़ी। आप उसे स्वप्न ही समझें।'

'क्यों ?'

'कभी उसके पीछे प्राण खो बैठेंगे, अभी तो सिर ही फूटा है।'

'इस भाव में क्या सौदा महँगा रहेगा ?'

'इस भाव भी न मिले तो ?'

'प्रकृति का अनुशासन सारे प्राणियों को मानना ही पड़ता है, पांडे जी।'

'कोई उसे तोड़ भी सकता है।'

'वह तितली उसे तोड़ेगी ?'

'वह साधारण स्त्री नहीं है, दीपक जी।'

'साधारण वस्तु दीपक नहीं चाहा करता पांडे जी।'

'इस समय तो आप साधारण वस्तु की ही ओर ध्यान दीजिए। प्रेस ख़रीद चुका हूँ। अपनी जायदाद सँभालिए।'

'जायदाद जिनकी होगी वे सँभालेंगे। साधारण वस्तु के लिये दीपक जी के पास अवकाश नहीं है। मुझसे तो उस असाधारण तितली का ही चर्चा कीजिए।'

'आप में इतनी बुद्धि! इतना बल! ऐसा साहस! इन गुणों का सदुपयोग होना चाहिए, दीपक जी। तितली के पीछे दौड़कर इन्हें नष्ट करना आपको शोभा नहीं देता।'

'कैसी बातें कर रहे हो, कविवर! पड़ गये निन्यानवे के फेर में? सारी सहृदयता सुखा दी? नहीं जानते कि तितली पर मुग्ध होना प्रकृति देवी की सच्ची उपासना है? मैं उससे मिलना चाहता हूँ। आप तो उससे परिचित दीखते हैं।'

'मैंने उसकी शकल भी नहीं देखी है। केवल उसकी सराहना सुनी है।'

'उसने मेरे लिये रात भर कष्ट उठाये। उसे कोई उपहार मिलना चाहिये।'

'मुझे भी इसका ध्यान था। किंतु चपरासी द्वारा दुर्घटना की सूचना भेजकर सवेरे ही वह स्टेशन चली गई, गाड़ी पकड़ने के लिये। तब से अब तक लौटकर नहीं आई। दिल्ली गई है। सुना है तीन महीने में आवेगी।'

'दिल्ली में उसका पता ?'

'सो तो अस्पताल से मालूम होगा। केवल नाम बतला सकता हूँ।'

'क्या नाम ?'

'अमरबेलि।'

'बिन मूल की !'

'इसका मूल तो उद्भिज-समाज के सिर में होता है।'

दीपक जी ने बोतल निकाली और प्याली भरते हुए बोले—

'अमरबेलि ! एक दम नया नाम ! नाम के सिवा आपने और कुछ नहीं सुना, पांडे जी ?'

'आप चाहते हैं तो सुनने का प्रयत्न करूँगा। चलिए प्रेस तो देख लीजिये।'

'चलिए।' प्याली पीकर दीपक जी ने कहा।

दीपक जी को प्रेस दिखाने के लिये पांडे जी गये। दूर से ही दो साइनबोर्ड दिखाई पड़े, जिन पर लिखा था—

'आलोक' आफिस। 'दीपक प्रेस।'

'नाम तो बदलिए, पांडे जी, इसका नाम रखिए 'मजदूर प्रेस।'

'नाम तो पड़ चुका, और जो कुछ कहिए करूँ।'

'चाहता हूँ कि सारे कर्मचारी प्रेस के मालिक बनें। हानि-लाभ, सब में साझी हों।'

'सारे कर्मचारियों को बुलाता हूँ। आप उन्हें सब कुछ समझा दें।'

फ़ोरमैन 'आलोक' का प्रूफ लेकर आया। सारे कर्मचारियों को एकत्रित करने के लिये पांडे जी ने उसे आदेश दिया। दीपक जी ने सब से बातें कीं। उन्होंने कहा—

'भाइयो, आज से आप लोग इस प्रेस के मालिक होंगे। प्रेस को जो कुछ लाभ होगा उसका कुछ अंश आप लोगों की राय से प्रेस के स्थायी कोष में जमा कर दिया जायगा, शेष सब आपके काम और आपकी आवश्यकता के अनुसार आप लोगों में बाँट दिया जायगा। इसी प्रकार घाटा हुआ तो उसका फल भी आपको ही भोगना पड़ेगा।'

'घाटा क्यों होगा, सरकार!' एक ने कहा।

'सरकार नहीं, मुझे दीपक कहते हैं। दो चार दिन में आप लोगों की राय से सारे नियम बना लिये जायँगे और उनकी रजिस्टरी हो जायगी। अपनी जायदाद की रक्षा आप लोग स्वयं करेंगे। इसके लिये आप लोगों की एक कमिटी बन जायगी।'

एक ही सप्ताह में यह सारा काम हो गया। प्रेस का प्रबन्ध करने के लिये कमेटी भी बन गई। दीपक जी उसके प्रधान और पांडे जी मंत्री चुने गये।

मकान के निचले भाग में प्रेस था। ऊपर के कमरों में पांडे जी के साथ दीपक जी रहने लगे।

अमरवेलि का पता भी पांडे जी प्राप्त कर लाये। उसी पते से एक हार दीपक जी ने भेज दिया, लेकिन दस दिन बाद वह हार वापस आ गया। उसके साथ कागज़ का एक टुकड़ा मिला उस पर लिखा था—

'धन्यवाद,

—अमरवेलि।'

—:०:—

(४)

डायन-कन्या

'क्या है?' कहती हुई देवकी सामने आई।

'कई दिनों से स्कूल नहीं जा रहा है।' महेश मिश्र ने कहा।

'जाता तो है।' सहसा देवकी के मुँह से निकल पड़ा।

'जाता है! अभी से तुम्हारी आँखों में धूल डालने लगा! बड़ा होकर क्या करेगा?' महेश मिश्र सोचने लगे।

'बेकार सोच करते हो। मेरा सुरेश ऐसा नहीं है जैसे...।' कहते-कहते देवकी रुक गई।

'जैसे मैं? क्या कहना चाहती हो, कह डालो।'

'यही कहना चाहती थी कि मेरा सुरेश सीधा लड़का है। जैसे तुम थे, वैसा नहीं है।'

'मैं कैसा था?' महेश मिश्र ने ज़रा मुस्कुराकर पूछा। देवकी का साहस बँध गया। उसने कहा—

'सो तो सारा गाँव जानता है। बस्ता लेकर घर से निकलते, दिन भर किसी की ईख, किसी की मटर, किसी का आम, किसी के तालाब से सिंघाड़ा तोड़ते रहते। बेचारी माँ रोज शिकायतें सुनती। कुछ कहती तो चार-चार दिन घर से से ग़ायब हो जाते।'

'मेरी ज़िन्दगी का सारा कच्चा चिट्ठा आज ही खोल डालोगी क्या ?'

'तुम्हारी ज़िन्दगी का कच्चा चिट्ठा ताले में बंद थोड़े ही है। उसे तो सारा गाँव जानता है।'

'अच्छी बात है। मेरा बचपन बड़ा ख़राब था। मैं आवारा था। तो क्या चाहती हो कि सुरेश भी वैसा ही हो ?'

'हो तो बुरा क्या है ?'

'सुरेश को मुझ जैसा अक्खड़ और आवारा बनाना चाहती हो ?'

'उसी अक्खड़पन की बदौलत ज़मींदार ने तुम्हें नौकरी दी। है कोई दूसरा माई का लाल, जो गाँव से लगान वसूल करके ज़मींदार को दे सके ?'

'क्या रक्खा है इस नौकरी में! चौदह साल काम करते हो गये, आज भी चौदह ही रुपये मिल रहे हैं।'

'तुम्हें कमी किस बात की है? इसी चौदह रुपये की नौकरी से तुमने घर बनवाये, ब्याह किये, खेत बारी जुटा ली, आदमी बन गये। और क्या चाहिए ?'

'फिर भी ज़मींदार का नौकर ही तो हूँ, देवकी।'

'कौन तुम्हें नौकर कहता है ? जिसे चाहो उजाड़ो, जिसे चाहो बसाओ। गाँव के असली ज़मींदार तो तुम हो।'

'तुमने तो इतना ही देखा है। जब गाँव में दरोगा आता है तो उसका कितना मान होता है! उसे तुमने नहीं देखा? चाहता हूँ सुरेश भी पढ़ लिख कर किसी लायक़ हो।'

'तो बनाओ, मैं कब मना करती हूँ!'

'वह है कहाँ?'

'खेलता होगा। दिन भर के थके हो, हाथ मुँह धोओ, तब तक उसे बुला लाती हूँ।'

देवकी ने भरा हुआ लोटा सामने रक्खा। मिश्र जी आँगन में हाथ मुँह धोने लगे। तब तक देवकी सुरेश को लेकर भीतर आई और दिया जलाने लगी।

'कहाँ रहता है दिन भर?'

महेश मिश्र ने डाँट कर पूछा, लेकिन सुरेश मुँह लटकाये चुपचाप खड़ा रहा। तब तक मिश्र जी ने फिर पूछा—

'बोल, कहाँ रहता है?'

'बतला क्यों नहीं देता, सुरेश?' देवकी ने कहा।

'टप-टप दो चार बूँदें सुरेश की आँखों से ज़मीन पर गिर पड़ीं। माँ का हृदय पसीज गया। उसने कहा—

'अच्छा जाने दो, जो कुछ हुआ सो हुआ। कल से ऐसा नहीं करेगा। रोज स्कूल जायगा। बोल सुरेश जायगा?'

'नहीं।'

ऐसा उत्तर सुनने की आशा देवकी को न थी। उसे और भी आश्चर्य हुआ। उसने फिर पूछा—

'क्यों ? किसी ने मारा है ?'

'नहीं।'

'किसी ने कुछ कहा ?'

सुरेश चुप रहा। उसे गोद में बैठा कर देवकी ने फिर कहा—

'बतला दे सुरेश, किसने क्या कहा ?'

'सब कहते हैं।'

'क्या ?'

'अमरवेलि तेरी कौन है ?'

उत्तर सुन कर देवकी ने मिश्र जी की ओर देखा। मिश्र जी ने आँखें फेर लीं। बच्चे के सामने इस सम्बन्ध में कुछ कहना सुनना किसी ने उचित न समझा। दोनों के लिये भोजन परोस कर देवकी विस्तर लगाने लगी। बाप बेटे भोजन करके लेट रहे। तब वह दालान में आई। उसने अमरवेलि को बुलवाया। 'कब किसने सुरेश को क्या कहा ?' यह सारा प्रसंग वह सुनना चाहती थी। कुछ कहते हुए अमरवेलि को संकोच हो रहा था। किंतु देवकी की आज्ञा को वह टाल भी नहीं सकती थी। आँखें नीची करके कहने लगी।

'परसों की बात है चाची, पानी पीने की छुट्टी हुई थी। बारी के बीच वाले खँडहर में बैठ कर मैं लाई गुड़ खा रही थी। खाकर हाथ मुँह धोने के लिये मैंने पोखरी में पैर रक्खा। पानी में बड़ा-सा सिन्दूरिया आम मिला। ऊपर की डाल से टपक पड़ा था। वही आम सुरेश को देने के लिये गई थी। मंदिर के बगल वाले कुएँ पर चिल्लू लगाये सुरेश पानी पी रहा था। पेटू पंडित पानी पिला

रहा था। लोटे की रस्सी का एक सिरा कुएँ की सीढ़ी पर पड़ा था। सीढ़ी चढ़ कर मैंने सुरेश के पास आम रख दिया और कहा—'तेरे लिये आम है सुरेश। तब तक पेट्टू पंडित चिल्ला पड़ा—

'नीचे से नहीं कहते बना! अब क्या होगा? तूने तो पानी छू दिया।'

'सचमुच मेरा पैर रस्सी पर पड़ गया था चाची, मुझसे इतनी ही चूक हुई।'

'यह तो कोई चूक नहीं हुई, इसके आगे किसने क्या कहा?'

'उसको सुनकर क्या करोगी चाची? मैंने स्कूल जाना छोड़ दिया है। अब कोई कुछ न कहेगा।'

'दस दिन के लिये स्कूल मत छोड़ो बेटी, चौथे दर्जे की परीक्षा दे डालो। उसके बाद भी रहना तो गांव में ही है, इसलिये सारी बातें बताओ। जब तक तुम्हारे मिसिर चाचा हैं, तब तक तुम्हें डर किसका है?'

अमरबेलि ने फिर कहना शुरू किया—

'आम रख कर मैं फिर उसी खंडहर में जाकर बैठ गई। वहीं से सारी बातें सुन रही थी। मेरे जाते ही गंगासिंह ने कहा—

'गंगासिंह अब तक पढ़ता है क्या?' देवकी ने पूछा।

'मेरी ही कक्षा में पढ़ता है।'

'उसे तो मूँछें निकलने लगी हैं, अब तक चौथे ही दर्जे में पढ़ता है?'

'उसकी समझ में कुछ नहीं आता चाची। समय काटने के लिये चला आता है।'

'उसने क्या कहा ?'

उसने कहा—'वहिन का छुआ पानी पीने से कहीं धरम जाता है, पंडित ?'

पेटू पंडित ने कहा—'सुरेश का धरम गया और तुम्हें हँसी सूझी है !'

इसके बाद कई लड़के बोलने लगे । मैंने इस प्रकार की बातें सुनीं—

'अमरवेलि सुरेश की बहिन है क्या ?'

'नहीं जी कौन कहता है ?'

'दोनों का चेहरा कहता है । देखते नहीं ? जैसे एक ही साँचे में ढले हों ।'

'इतने ही से वह सुरेश मिश्र की वहिन हो गई ? यह कैसे हो सकता है ? एक ब्राह्मण दूसरी चमार ।'

'आस पास के गाँवों की सुन्दर से सुन्दर लड़कियों के बीच में उसे खड़ी करके देखो; कौन उसे चमार कहेगा ?' गंगासिंह ने कहा ।

'अरे भाई यह सब भेद तुम क्या जानो ! कलमी आम की बराबरी कहीं एक बीज के फल कर सकते हैं ? कलमी आम ऐसा ही होता है । देखने में बड़ा और सुन्दर; खाने में मजेदार; समझे ?' पेटू पंडित ने कहा ।

'हिही हिही, सुरेश की वहिन कलमी आम; हि ही ।' पेटू पंडित की बात पर सारे लड़के हँसने लगे । तब तक एक ने जोर से कहा—

'झूठी बात, फुलिया की बेटी सुरेश की बहिन नहीं हो सकती।'

'हाँ जी डायन-कन्या सुरेश की बहिन कैसे हो सकती है ?'

'झगड़ते क्यों हो ? सुरेश से ही क्यों नहीं पूछ लेते ?'

'सच तो, अमरबेलि तेरी कौन है, सुरेश ?'

'फुलिया की हीरा तेरी कौन है सुरेश ?

'डायन-कन्या तेरी बहिन है क्या सुरेश ?'

'कलमी आम तेरी बहिन है क्या सुरेश ?'

'अछूत-कन्या तेरी बहिन है ! छिः।'

'बहिन है, बहिन है, बहिन है।' सारे लड़के एक स्वर में चिल्लाने लगे और ताली पीट पीट कर हँसने लगे। तब तक घंटा बजने लगा। लड़के स्कूल में जाने लगे। जब मैं कुएँ के पास पहुँची तो सब लड़के चले गये थे। पेट्रू पंडित भी पोखरे की ओर चला जा रहा था, शायद नहाने के लिये। आगे बढ़ते ही मैंने देखा, पेड़ की जड़ के सहारे औंधे मुँह सुरेश पड़ा था। आम अब भी कुएँ पर पड़ा था। आम लेकर मैंने सुरेश को उठाया। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। आँसुओं से मुंह भींगा हुआ था। उसका मुँह पोंछ कर मैंने कहा—आम खालो, सुरेश। मैंने उसके मुँह से आम लगा दिया। उसने मेरा हाथ झटक दिया। आम दूर जा गिरा। गुठली छिटक गई। रस बिखर गया। हाथ पकड़ कर मैं उसे स्कूल की ओर ले चली, लेकिन वह फिर वहीं बैठ गया। मैंने जाकर गुरु जी से कहा। उसे बुलाने के लिये उन्होंने लड़के को भेजा। लेकिन सुरेश वहाँ से कहीं चला गया था। उसके बाद मैं स्कूल नहीं गई।'

'कल से जाना बेटी, सुरेश को भी ले जाना। कोई कुछ नहीं कहेगा।'

थोड़े से आम देकर देवकी ने अमरबेलि को लौटा दिया। देवकी आंगन में गई। महेश मिश्र करवट बदल रहे थे।

'अभी तक जाग रहे हो क्या?' देवकी ने पूछा।

'नींद नहीं आई।' महेश मिश्र ने कहा।

'क्या सोच रहे थे?'

'सुरेश कब तक मुँह चुराता रहेगा, यही सोच रहा था।'

'इस बात को आज से तेरह साल पहले सोचते तो ऐसी नौबत ही न आती।'

'कैसे सोचता? न सुरेश था, न तुम थीं। तब तो मैं आवारा और निखट्टू था। मेरे साथ तुम्हें ब्याहने को तुम्हारे बाप भी तैयार न होते। सभी तो भीष्म नहीं बन सकते। जो कुछ हो गया उसके लिये आज तुम ताना दे रही हो!'

'ताना सुनने के लिये मुझे लाये ही क्यों? फुलिया तो थी ही, उसी को घर में रखते।'

'उसे घर में क्यों रखता? अपना धरम थोड़े ही बिगाड़ना था। तुम्हें इसलिये लाया कि माँ की अन्तिम लालसा पूरी कर दूँ। उस समय मेरे पास चार पैसे भी हो गये थे। इसीलिये तुम्हारे बाप भी तुम्हें मेरे साथ ब्याहने को तैयार हो गये। पुरानी बातों को छोड़कर जब से तुम आई हो बतलाओ मैंने कौन सी बुराई की है?'

देवकी चुप रही। महेश मिश्र ने फिर कहा—

'जो कुछ मुझसे हो गया उसमें भी मैंने कायरता नहीं दिखाई।

दूसरा कोई होता तो अपने कुकर्म के फल को उसी दम जमीन में दबा कर ऊपर से धूल डाल देता। मैंने ऐसा भी नहीं किया। उस लड़की को चार अक्षर पढ़ी लिखी देख रही हो सो भी मेरी ही बदौलत। अपनी सामर्थ भर उसके लिये कुछ न कुछ करता ही रहा हूँ।'

'मैंने भी तो आज तक तुमसे कुछ नहीं कहा। जो कुछ सुना, सुनकर चुप रह गई। मैंने भी उस लड़की को पराई नहीं समझा। समझती भी कैसे? सगे भाई की तरह सुरेश को प्यार करती है। दो वर्ष पहले उसे गोद लिये फिरती थी। आज उसे अपने साथ स्कूल ले जाती है। आज बात चल पड़ी तो मेरे मुँह से इतनी बात निकल गई। कल सुरेश को भी समझा दूँगी। शर्माता क्यों है? कोई पूछे तो कह देना, हाँ अमरबेलि मेरी बहिन है।'

'पूछने वाले जानने के लिये तो नहीं पूछेंगे, वे तो सुरेश को चिढ़ाने के लिये पूछेंगे।'

'सुरेश चिढ़ना छोड़ देगा तो लोग चिढ़ाना छोड़ देंगे। अमरबेलि को भी सब ऐसे ही चिढ़ाते थे। कोई उसे डायन-कन्या कहता था। कोई पूछता तेरा बाप कौन है? बेचारी रोकर रह जाती। अब वह नहीं चिढ़ती तो कोई चिढ़ाता भी नहीं।'

'यह बात यहीं तक तो नहीं है। वह ब्याहने लायक होती जा रही है। जो भी आता है लड़की के बाप को जानना चाहता है। लोगों में काना फूसी होने लगती है। गड़ा हुआ मुर्दा उखड़ता है। लोग मेरी ओर उँगली उठाते हैं। मैं चाहता हूँ कि लोग पुरानी बातों को भूल जाते।'

'यह कैसे हो सकेगा ?'

'यही तो सोच रहा हूँ। इतना तो कर ही सकती हो कि वह इस घर में न आया करे।'

देवकी ने कोई उत्तर न दिया। कुछ देर बीत गई। महेश मिश्र ने धीरे से कहा—'देवकी' कोई उत्तर न मिला। महेश मिश्र उठे। दवे पांव जाकर उन्होंने द्वार खोले। बाहर से ताला लगा कर आगे बढ़े।

आधी रात का समय था लेकिन गर्मी के कारण अब भी कोई जाग रहा था। फिर भी अन्धेरे ने मिश्र जी का साथ दिया। लोगों की आँखों से बच कर आबादी से बाहर निकल आये। अब दोनों ओर खेत और बीच में पगडंडी थी। दो सौ कदम जाने पर बायें हाथ पोखरी पड़ी। हल्की हवा की लहर आई। कुछ सरसराहट हुई। ऐसा जान पड़ा जैसे वह पुष्करिणी सांस ले रही हो। उस सरस-हृदया बाल-सहचरी ने जैसे महेश मिश्र के कान में कहा—'मुझे भूल गये मिसिर! बारह साल बाद आज आये भी तो ऐसे जा रहे हो जैसे मैं तुम्हारी कुछ लगती ही नहीं। आ जाओ, मछली दूँगी, फ़सल में सिंघाड़े खिलाऊँगी।'

यह क्या! बातें करते-करते पुष्करिणी ने हाथ बढ़ा दिये। अपनी भुजाओं के जाल में उसने मिश्र जी के पैरों को जकड़ लिया। कोई दूसरा होता तो इसे भूतों की लीला समझ कर चीख़ उठता, शायद बेहोश हो जाता। रास्ते में लेटे हुए हरी-हरी पत्तियों वाले ये बाँस नहीं हैं। ये तो कृष्ण-वसना सरसी की साक्षात् भुजायें हैं। इस बाहु-पाश से अपने आप को छुड़ाकर महेश मिश्र ने मन ही मन कहा—'नहीं चाहिये। ऐसी छेड़ छाड़ न किया करो। देखती

नहीं हो ? अब मैं बड़ा हो गया हूँ। गाँव में मेरी मान-प्रतिष्ठा बढ़ गई है। मछली और सिंघाड़े के लिये तुम्हारे पास बैठा रहूँ तो दुनिया क्या कहेगी ? भूल जाओ पुरानी बातों को।'

पोखरी के पंजे से छूट कर मिश्र जी आगे बढ़े। पुराने शत्रुओं से सामना हुआ। रास्ते में काँटों का जाल बिछाये आज भी वे खड़े थे। लेकिन वे कर क्या सकते थे ? इन शूलों का मान-मर्दन करने के लिये आज महेश मिश्र के पैरों में जूते थे। महेश मिश्र ने यह मोर्चा भी मार लिया। बेचारे बबूल ताकते ही रह गये।

अब आगे था रसाल-मण्डल। उस सरस-हृदया-सरिणी की भाँति महेश मिश्र के यौवन-सहचर रसाल-मंडल ने भी कहा—'मेरा सारा उपकार भूल गये मिश्र जी ! रसालमयी इन सफल भुजाओं को देखो। इन्हीं भुजाओं की आड़ में, ऐसी ही अन्धेरी रात में, इन आमों से भी मधुर मेवा तुम्हें बीसों बार मिले हैं। याद है ? पास आओ, फिर पाओगे।'

'मैं चाहता हूँ कि तुम भी पुरानी बातों को भूल जाओ।'

'ऐसा कैसे हो सकता है ? सामने देखो, मिट्टी की दीवार, उस पर फूस की छत, छत पर कद्दू की बेल, झोपड़ी के द्वार पर मिट्टी का ऊँचा थाला, उसमें तुलसी का पेड़, सब उसी तरह खड़े हैं जैसे आज से तेरह साल पहले। याद करो, इन भुजाओं की छाया में खड़े होकर तुम तीन बार गीदड़ की बोली बोलते थे। तब झोंपड़े का द्वार खुल जाता था। उसमें से निकलती थी एक डायन। तुम बोलो, वह फिर निकलेगी। आज आ गये हो तो बोलो।'

'दुनिया क्या कहेगी ?'

'यही सवाल तो उस डायन ने किया था, आज से तेरह वर्ष पहले। है याद? तुमने क्या उत्तर दिया था? 'दुनिया तो इस समय सो रही है, एकदम मुर्दे की तरह सो रही है। मुर्दे का क्या डर?' एक बार बोलो तो सही, देखो बोल भी सकते हो या नहीं।'

जी में आया कि शृगाल-स्वर में पुराने मंत्र का उच्चारण कर डायन का आवाहन करें और अपनी विषम समस्या उसके सामने रक्खें, शायद वह इस समस्या का कोई हल निकाल दे। झोंपड़ी की ओर मुँह करके आम के बाग में महेश मिश्र खड़े हुए। बोलने ही जा रहे थे तब तक उसी झोंपड़ी में प्रकाश की एक क्षीण रेखा दिखाई पड़ी। 'इतनी रात में दिया जलाकर डायन क्या कर रही है।' यह सोच कर मिश्र जी को कौतूहल हुआ। बिना मंत्रोच्चार किये मिश्र जी ने झोंपड़ी की ओर पैर बढ़ाये। द्वार पर पहुँचते ही भीतर दो कंठस्वर सुनाई पड़े। इस प्रकार बातें हो रही थीं—

'नहीं माँ, घर में भी नहीं रहूँगी, यह गाँव छोड़ दो।'

'क्यों हीरा?'

'क्योंकि कि हम तुम नीच हैं।'

'माँ चुप रही, बेटी ने फिर कहा—

'हम लोगों का यहाँ कोई भगवान भी नहीं है। माँ, हम लोग कुत्ते से भी नीच हैं।'

'कौन कह रहा था?'

'अपनी आँखों देखा माँ, तेरी मौसी का बेटा, वही मेरा मामा, गाँव के तालाब से निकला। मंदिर के किवाड़ खुले थे। कुत्ता घुसा हुआ था। भगवान के मुँह में लगे हुये बताशे को चाट रहा था।

मामा को देखते ही पें; पें, करता हुआ कुत्ता भाग गया। चाट-चाट कर उसने भगवान का मुँह खराब कर दिया था। अपने गीले अँगोछे से मामा जी भगवान का मुँह पोंछने लगे। मंदिर के भीतर कुत्ते को चिल्लाते पेट्ठू पंडित ने सुन लिया था। वह दौड़ा आया। मामा को देखते ही वह चिल्ला उठा—'हाय, हाय, अन्धेर हो गया, गजब हो गया, मंदिर में चमार घुस आया, भगवान को भ्रष्ट कर दिया।'

'उसका चिल्लाना सुन कर कई आदमी आ गये। उन्होंने भगवान के सामने ही मामा को बहुत मारा माँ, और भगवान देखते रहे।'

'गलती तो तेरे मामा की है, हीरा। वहाँ वह गया ही क्यों?'

'मैं भी ऐसा ही सोचती हूँ माँ, भगवान तो हम लोगों का शत्रु है, शत्रु का मुँह पोंछने मामा जी गये ही क्यों?'

'यह मेरा मतलब नहीं था हीरा, भगवान किसी का शत्रु नहीं है। हमें इसलिए मंदिर में नहीं जाना चाहिए कि हम लोग नीच हैं।'

'हम नीच क्यों हैं माँ?'

'जो नीच करम करता है उसे भगवान नीच बनाते हैं।'

'मैं कौन सा नीच कर्म करती हूँ? मैंने तो आज तक मांस-मछली भी नहीं खाई। पेट्ठू पंडित तो बकरे खाता है, सो भी चोरी का।'

'तुझे कैसे मालूम?'

'स्कूल के लड़के कहते हैं। बुधिया का बकरा गंगासिंह के खेत

में घुस गया था। गंगासिंह और पेट्रू पंडित ने उसे मार कर खा डाला और खाल को ईख के खेत में गाड़ आये।'

'ऐसी बात किसी से मत कहना हीरा।'

'देख माँ, है न नीच काम? तभी तो तू कहती है कि ऐसी बात किसी से मत कहना? फिर भी पेट्रू पंडित ऊँच है और मैं नीच।'

'ऊँच नीच होना इस जनम के करम का फल नहीं है बेटी, हमें तो पिछले जनम के करम का फल भगवान दे रहा है।'

'तब तो भगवान बड़ा अत्याचारी है मां।'

'भगवान को ऐसे नहीं कहा जाता बेटी।'

'तो हमें वह बतलाता क्यों नहीं कि पिछले जन्म में हमने कौन सा अपराध किया था, जिसका दंड हमें दे रहा है। ऐसे भगवान से अच्छे न्यायी तो अंग्रेज हैं। दंड देने से पहले कह देते हैं—तुमने चोरी की, इसलिये जेल जाओगे। भगवान इतना भी नहीं करता, इसलिये अन्यायी है।'

'इन बातों को पंडित लोग ही जानते हैं बेटी, मैं क्या जानूँ?'

'तो पेट्रू पंडित इन बातों को जानता है? भगवान उसको ही अपनी बातें बतलाते हैं, तुझे क्यों नहीं बतलाते?'

'पंडित से मेरा मतलब पढ़े लिखे लोगों से है। जो पुस्तकें पढ़ते हैं वही लोग भगवान की बातें जानते हैं। न तो पेट्रू पंडित पढ़ा लिखा है, न मैं पढ़ी लिखी हूँ।'

'तूने क्यों नहीं पढ़ा माँ?'

'मैं तो चमार हूँ, चमारों को पढ़ने से क्या काम?'

'तो मैं कैसे पढ़ने लगी?'

'इस अंग्रेजी राज में चमार भी पढ़ने लगे हैं। हिन्दुओं के राज में चमार को कोई नहीं पढ़ाता था। इसीलिये आज भी चमारों में पढ़े लिखे लोग बहुत कम हैं।'

'अच्छा हुआ माँ, जो हिन्दुओं का राज मिट गया, नहीं तो आज मैं कैसे पढ़ पाती? वह दिन कब आवेगा माँ, जब हिन्दू भी मिट जावेंगे? वह बड़ा अच्छा दिन होगा, न कोई ऊँच होगा, न कोई नीच।'

'हम भी तो हिन्दू ही हैं बेटी, हम भी तो मिट जायँगे!'

'अच्छा ही होगा माँ, नीच होकर जीने से मिट जाना ही अच्छा है। मिट कर हम मिट्टी में मिल जायँ तो शायद हमारी मिट्टी से राम और सीता की मूर्तियाँ बनें और हमारी पूजा होने लगे।'

'हमारे चाहने से कोई नहीं मिटता, बेटी। सब को मिटाने और बनाने वाला भगवान है।'

'नहीं मां, कम से कम हमको भगवान ने नहीं बनाया है। जिनके छूने से भगवान भ्रष्ट हो जाता है उन्हें भगवान किन हाथों से बना सकता है? हमको बनाने वाला भगवान कोई दूसरा ही होगा मां, उसकी दुनिया दूसरी होगी। वह हमको नीच नहीं समझेगा। चलो उसी के पास चलें।'

'ऐसी कोई जगह नहीं है बेटी, तुम जहां जाओगी, वहीं नीच समझी जाओगी।'

'सच कहती हो, मां?'

'हाँ, हीरा।'

'तब तो मुझे पाल कर तुमने अच्छा काम नहीं किया, माँ।

तुमने मुझे इसीलिये पाला कि जब तक जिऊँ, बिल्ली, कुत्ते और नरक के कीड़े से भी नीच समझी जाऊँ ? जिसमें पचासों दुर्गुण हों, ऐसा पेटू पंडित भी मुझे कलमी आम कहे। मेरा अपमान करे और दूसरों से भी करावे ? इसीलिये तुमने मुझे पाला था ? जन्म देते ही तुमने मेरा गला क्यों नहीं दबा दिया माँ ?'

माँ का हृदय द्रवित होकर आँखों में आ गया। उसे देख कर बेटी ने कहा—

'रोती क्यों हो, माँ ? दुनिया बहुत बड़ी है। किसी दूसरी जगह चलो।'

'इस गांव से बाहर मैंने पैर ही नहीं रक्खा हीरा, तुझे कहाँ ले जाऊँ ?'

'मैं तो जाऊँगी मां, तुम मेरे लिये रोना मत।'

डायन और डायन-कन्या का सम्वाद सुनकर महेश मिश्र को अपनी सारी समस्या भूल गई। चुपचाप घर चले गये।

आज वह सचमुच डायन है। बाल तो अब तक काले हैं, लेकिन धूप और शीत की थपेड़ों ने मुँह पर झुर्रियाँ डाल दी हैं। हथेली तो मोटर टायर हो गई है। बोवाई, कटाई और ईख की छिलाई के समय आज भी उसकी पुकार होती है। इसी से उसका संसार चलता है।

आज की डायन किसी ज़माने में माँ बाप की इकलौती फूल-कुमारी थी। खेत में खाद डालने वाली चमार-कन्या को फूलकुमारी कौन कहता ? लोग उसे फुलिया कहने लगे।

वह पेट में थी तभी मां ने उसका वाग्दान कर दिया था। लड़का

हुआ तो बुधिया की बेटी के साथ, लड़की हुई तो मँगरी के बेटे के साथ। बेचारी जन्म लेने से पहले ही विधवा हो गई। इसी प्रकार जवान होने से पहले वह चार चार विधवा हो गई और अन्त में माँ को भी खा गई। अब किसमें साहस था जो ऐसी डायन का हाथ पकड़ता?

लेकिन समाज ही उसे अछूत और डायन कहता था। मधुमास ने उससे मुँह न मोड़ा। वह ठीक समय पर आ पहुँचा और मंद-मलयानिल के झूले में उस षोडशी डायन को भी झुला गया और छोड़ गया, उसकी गोद में अपने चरणचिन्ह सी एक कली। डायन की डाल में कली फूटने की आशंका होते ही डायन का बाप भी मुँह चुराकर चला गया।

पहले फूलकुमारी, फिर फुलिया, फिर डायन और आज केवल 'अपत कटीली डार' और उस डाल पर बढ़ती हुई मधुमास के चरणचिन्ह सी एक कली, गौर, सुडौल शरीर, अंडाकार मुख, बड़ी बड़ी भोली भोली दो आंखें—यही कली उस 'अपत कटीली डार' के जीवन की सरसता थी। इसे वह हीरा कहती थी।

जब हीरा पाँच वर्ष की हुई तो डायन ने उसे गांव के स्कूल में भेजा। नाम लिखते समय लड़की का नाम हीरा गुरुजी को न जँचा। वह कोई नया नाम सोचने लगे। उनके सामने बबूल का पेड़ था। उस पर फैली हुई, अमरबेलि लहलहा रही थी। काँटों में पलने वाली बिना जड़की अमरबेलि ने गुरु जी का ध्यान आकर्षित कर लिया। झट उन्होंने अपने रजिस्टर में डायन की हीरा का नाम अमरबेलि लिख लिया।

जब किसी के मुख से अपनी हीरा की सराहना सुनती तो दुनिया का सारा तिरस्कार, सारा लांछन, सारा दुख और अपमान वह डायन भूल जाती। उसी हीरा के मुख से आज की बातें सुनकर डायन का हृदय मछली की तरह छटपटा रहा था। हीरा तो सो गई लेकिन डायन कई घंटे तक जागती रही। इसीलिये सवेरे धूप निकल आई थी, तब भी वह सो रही थी।

'कहाँ हो अमर बेटी?'

बड़े गुरूजी की आवाज़ सुनकर माँ बेटी जाग उठीं। दोनों ने बाहर आकर गुरूजी को हाथ जोड़े।

'कई दिनों से पढ़ने क्यों नहीं आई अमर?' गुरुजी ने पूछा।

'चमार की बेटी पढ़कर क्या करेगी पंडित जी?' फुलिया ने कहा।

'चमार भी आदमी ही है फुलिया।'

'आप ही ऐसा समझते हैं पंडित जी, दुनिया तो ऐसा नहीं समझती।'

'दुनिया तो उसी को आदमी समझेगी जो दुनिया का कुछ बना सकता है या बिगाड़ सकता है। जिसमें ऐसी शक्ति न हो वह चाहे चमार हो चाहे ब्रह्मा बाबा के मुँह से फूल की तरह टपक पड़ा हो, दुनिया की आंखों में उसका कोई मान नहीं। बनाने बिगाड़ने की शक्ति आयेगी पढ़ लिख कर समझदार हो जाने से।'

'आप ठीक कहते हैं, पंडित जी, लेकिन मैं क्या करूँ? हीरा का जी उचट गया है।'

'उसका कारण मैं जानता हूँ। कोई उसे डायन-कन्या कहता

होगा, कोई बाप का नाम पूछतो का डर था। लेकिन वह यह भी
नहीं मालूम की दुनिया में बड़े बड़े और कहे—'असली हीरा तो
का नाम आज भी किसी को मालूम नहीं किसी पड़ोसिन को लाने
उनके नाम पर श्रद्धा से सिर झुकाती है। मेरे आता! आज तो
बेटी, तुम कुत्तों को भूँकने दो। उनकी ओर मत देखो आई।
को ऐसी बना लो जिससे तुम अपनी थाली में से एक टुकड़ा पाया।
आगे फेंक सको। तब तो वे ही कुत्ते, जो आज नाक चढ़ा कर, कार
निकाल कर गुर्रा रहे हैं, कल दुम हिला हिलाकर तुम्हारे पैर
चाटेंगे।'

'ऐसा कैसे हो सकेगा, पंडित जी? आपके स्कूल में चौथे ही दर्जे तक तो पढ़ सकती है?'

'तूँ इसकी चिन्ता मत कर। साँझ सवेरे मेरे पास आती रहेगी तो मिडिल पास करा दूँगा। उससे आगे अपने आप पढ़ लेगी। इसके सामने ही इसकी सराहना मैं नहीं करना चाहता। बोलो अमर बेटी, आओगी आज से?'

'हाँ।'

इस 'हाँ' ने फुलिया का सारा अन्धकार काट दिया। उसकी आँखों में आशा का आलोक चमक उठा। गुरु जी जाने लगे तो फुलिया ने उनके पैर पकड़ लिये।

'हैं, हैं, ? यह क्या कर रही है?' गुरु जी ने कहा।

'अब तक तूने जिसे भगवान समझा था, वह सचमुच पत्थर था हीरा। हम दुखियों का आंसू पोंछने वाले सच्चे भगवान को आज देख ले।' माँ ने बेटी से कहा।

जब किसी के मुख से अपनी भगवान की सच्ची पूजा है,
दुनिया का सारा तिरस्कार, सारा
वह डायन भूल जाती। उस क्या कह रहे हैं ?'
डायन का हृदय मछली, किसी की रोती हुई आत्मा को हँसा कर
लेकिन डायन न हो जाय तो वही आनन्द भगवान का दिया
निकल आ प्रसाद है।' गुरु जी ने कहा।

मां बेटी ने फिर गुरु जी को हाथ जोड़े और गुरु जी आशीर्वाद देकर चले गये।

—:०:—

(५)

हीरे की चोरी

हीरा ने चौथी कक्षा पास करली। उसके बाद एक वर्ष बीत गया, दूसरा वर्ष भी बीत रहा था। उसका अध्ययन जारी था। इसी वर्ष वह हिन्दी मिडिल पास कर लेगी, पंडित जी दावे के साथ कहते थे। ऐसी बातें सुन कर फुलिया फूली न समाती। मुखिया को मुखियापन का गर्व था, पटवारी को क़लम का गर्व था, पेटू पंडित को जनेऊ का गर्व था, फुलिया को भी हीरा का गर्व था।

बसंत पंचमी का त्यौहार आया। फुलिया ने हीरा को सजाया। चमकती चूड़ियाँ, सँवारे हुये बाल, आँखों में काजल, माथे पर बिन्दी, और किनारे पर मोरों की पंक्तिवाली बसंती सारी, हीरा तो चम्पाकली बन गई। इस तरह सजाकर वह हीरा को बाहर

नहीं निकालती थी। नजर लगने का डर था। लेकिन वह यह भी चाहती थी कि कोई आकर उसे देखे और कहे—'असली हीरा तो तेरे ही पास है फुलिया।' किसी बहाने से किसी पड़ोसिन को लाने के लिये वह बाहर निकल गई। किन्तु कौन आता! आज तो सभी के घर वसन्त था। वह चक्कर काट कर चली आई।

द्वार पर आते ही उसने घर का किवाड़ भीतर से बंद पाया। फुलिया को विस्मय हुआ। दिन में किवाड़ बंद कर के इस प्रकार हीरा बेटी कभी नहीं पढ़ती थी। किवाड़ पर थपकी देकर फुलिया ने आवाज दी। भीतर अर्गल खिसकने का शब्द हुआ और किवाड़ खुल गये। भीतर का दृश्य देखते ही फुलिया को काठ मार गया। उसकी हीरा मुँह छिपाये खाट के सहारे पड़ी थी। सारी और सिर के बाल अस्त व्यस्त हो रहे थे। पास ही टूटी हुई चूड़ियाँ पड़ी थीं। कलाई पर रक्त निकल कर जम गया था। उसका सिर उठा कर फुलिया ने मुँह देखा। गालपर शायदखाट की रस्सी गड़ गई थी। उस पर से आँसू बहता चला जा रहा था। मुँह लाल हो रहा था। आँखें झुकी हुई थीं।

आज हीरे की कनी लुट गई। फुलिया की कली कुचल गई। उसका हृदय तड़प उठा। घटना का कुत्सिक चित्र उसकी आँखों में नाचने लगा। फिर उसे बेटी का ध्यान आया। उसे न जाने कहाँ कहाँ घाव पहुँचा होगा। लज्जा और अपमान की आग भीतर ही भीतर धधक रही होगी। भीतर ही भीतर लपटें उठ रही होंगी। उस आग में से अपनी कली को निकालना ही होगा।

फुलिया ने किवाड़ बंदकर लिये और बेटी को गोद में लेकर

खाट पर बैठ गई। उसके हाथ, पैर, मुँह और पीठ पर हाथ फेरने लगी। जलन को मिटाने के लिये वह स्नेह का लेप लगाने लगी। इसी प्रकार सिर पर हाथ फेरते हुये उसने बाल सुलझा दिये। फिर उसने बिखरी हुई सारी उठाई। सारी को झाड़ झाड़ कर पहनाने लगी। आँसुओं के प्रवाह से केवल आँचल गीला हो रहा था।

अब घटना का चित्र उतना कुत्सित नहीं दीख रहा था जितना फुलिया की कल्पना ने रंग दिया था। अपना आँचल गीला कर के फुलिया ने अपनी हीरा का मुँह पोंछ दिया। इन शीतल उपचारों से बेटी के हृदय की आँधी का वेग शान्त हुआ। अवसर देख कर फुलिया ने पूछा

'कौन आया था, बेटी ?'

'गंगासिंह।'

उत्तर देकर हीरा चुप हो गई। फुलिया और कुछ सुनने के लिये उसका मुँह निहारती रही। हीरा ने अपने आप कहा—

'पहले द्वार में खड़ा हुआ 'क्या क्या पढ़ लिया ?' 'मिडिल पास करने के बाद क्या करेगी ?' ऐसी ही बातें पूछते पूछते खाट पर आ बैठा। उसके बैठते ही मैं उठ गई। मैंने कहा—'इस समय जाओ, माँ आजाय तब आना। वही तुम्हें सब कुछ बतायेगी। मैं स्वयं नहीं जानती कि आगे क्या करूँगी।' किन्तु वह न उठा, कहने लगा—'तुम्हारे साथ पढ़ा हूँ अमर, और तुम मुझे भगा रही हो! मैं तो तुम्हें नीच भी नहीं समझता। तुम्हारे हाथ का पानी भी पी सकता हूँ। पिलाकर देख लो। दूध, बादाम और केसर

डालकर भंग बनाया है, ऐसा बढ़िया जैसे अमृत। कहो तो एक लोटा ले आऊँ, तुम भी पियो और तुम्हारे हाथ से मैं भी पिऊँ। यही पूछने के लिये आया हूँ। बोलो, ले आऊँ?'

'मेरे बार बार कहने पर भी वह न हटा। बड़बड़ाता ही गया। तब मैं ही बाहर जाने लगी। उसने पीछे से मुझे पकड़ लिया। 'छोड़ दे, छोड़ दे।' मैं चिल्लाने लगी। बाहर कोई लड़का छिप कर सब कुछ देख रहा था। वह चिल्ला उठा—'सररर कबीर।' घबराकर गंगासिंह बाहर निकला। उसी दम मैंने किवाड़ बंद कर लिये।'

डेढ़ साल पहले हीरा ने कहा था—'मैं तो जाऊँगी माँ, तुम मेरे लिये रोना मत।' वे शब्द आज फिर फुलिया के कान में खटकने लगे। एक भयानक आशंका उसके सामने खड़ी हो गई। उसे दूर करने के लिये उसने कहा—

'अब गंगासिंह इधर नहीं आवेगा, हीरा, तुम निडर हो जाओ।'

'उसे कैसे रोक सकोगी, माँ?'

आज फुलिया को मालूम हो गया कि हीरा को चोरों से बचाने के लिये मिट्टी और फूस की झोंपड़ी नहीं, लोहे की तिजोरी चाहिए। उसने फिर कहा—

'गंगासिंह इस गाँव में सब से मजबूत नहीं है, हीरा।'

'लेकिन हम तो इस गाँव में सब से कमजोर हैं, माँ।'

'तू महेश मिश्र की बेटी है, हीरा।'

'मैं तेरी ही बेटी हूँ, माँ।'

लोक-लज्जा-वश जिस रहस्य को फुलिया कभी जबान पर भी न लाई थी आज उसे ही उसने बेटी के सामने उगल दिया। उस गोपनीय रहस्य का उद्‌घाटन भी हीरा के लिये फ़ौलादी क़िले का काम न कर सका। आज हीरा बड़ी हो गई है। उसमें समझ आ गई है। वे दिन चले गये, जब हौआ आया करता था, हीरा को खाने के लिये। उन दिनों माँ का आँचल ही फ़ौलादी क़िले का काम कर जाता था। हौआ, बाघ, भूत जो भी आता, वह झट माँ की आँचल में छिप जाती। लेकिन आज सारे गाँव में धाक रखने वाले महेश मिश्र पर भी उसे भरोसा नहीं हुआ। कुछ देर तक फुलिया सोचती रही। फिर उठी। हीरा की आँखों से चुरा कर उसने ताला उठा लिया और बाहर निकल कर उसने कहा—'भीतर से किवाड़ बन्द कर लो हीरा, अभी आती हूँ।'

हीरा ने भीतर से किवाड़ बन्द किये। बाहर से फुलिया ने ताला लगा दिया। वह महेश मिश्र के पास पहुँची। सारा वृत्तान्त सुनकर महेश मिश्र ने गंगासिंह को बुलवा भेजा, लेकिन वह घर पर न था। फुलिया लौटी तो उस समय रात हो चुकी थी। अपनी हीरा को आँचल में छिपा कर वह सो गई।

अगले दिन सवेरे ही महेश मिश्र ने गंगासिंह को बुलाकर कहा—'बड़े आवारा हुये जा रहे हो, गंगासिंह, बाप रहा नहीं, माँ को उल्टे तुम्हीं डाँट देते हो। देखता हूँ मुझे ही तुम्हारी मरम्मत करनी पड़ेगी।'

'मैंने क्या किया चाचा?'

'गाँव में गुंडई करते हो और मुझसे पूछते हो क्या किया?

बेचारी सीधी लड़की के ऊपर हाथ डालते तुम्हें शरम नहीं आई ?...बोलो।'

'मिसिर चाचा......।'

'कहो, रुक क्यों गये ?'

'कह दूँ, चाचा ?'

'पूछ तो रहा हूँ।'

'तो उसके साथ मेरा व्याह कर दो।'

'कैसी बात ? सोचकर बोलो गंगासिंह।' महेश मिश्र ने नर्म और शान्त होकर आश्चर्य के साथ कहा।

'उसका व्याह किसी के साथ तो होगा ही, मैं क्या बुरा हूँ ?'

'उसे व्याह कर गाँव को, बिरादरी को, अपनी माँ को कैसे मुँह दिखाओगे ?'

'उसे लेकर गाँव से बाहर चला जाऊँगा, कहीं कमा खा लूँगा।'

'ऐसी बात मत सोचो, बेटा, घर के काम में मन लगाओ। बिरादरी में ही लड़की खोज दूँगा।'

'उस जैसी नहीं मिलेगी, चाचा।'

'हाय बेटी, हाय' बाहर से आवाज आई।

'हैं, यह क्या !' महेश मिश्र ने कहा।

'हाय बेटी, हाय' वही आवाज निकट आने लगी। फिर धम्म से कुछ गिरा। महेश मिश्र बाहर आये। भीड़ लगी थी। सब कहते थे, 'फुलिया पागल हो गई।' बाल बिखर गये थे। धोती फट गई थी। धूल और मिट्टी में वह लथपथ हो रही थी। गंगासिंह को देखते ही उसके पैरों में रस्सी की तरह लिपट गई। कहने लगी—

'कहाँ है मेरी हीरा ? दिखा दे भैया गंगासिंह ! जल्दी ही मरूँगी। एक बार देख लूँ, फिर तू ही ले लेना। कहाँ छिपा रक्खा है ? बता दे, कहाँ है मेरी बेटी ?'

'खोज लाता हूँ।'

पैर छुड़ा कर गंगासिंह आगे बढ़ा।

'मुझे भी लिये चल।' कह कर फुलिया उठी और दो क़दम चलकर गिर पड़ी। महेश मिश्र ने उसे घर भिजवाया। गाँव में खोज होने लगी। तालाब और कुएँ भी छाने गये। किसी को एक कुएँ में सिर दिखाई पड़ा। लोगों की भीड़ पहुँच गई। सचमुच कुएँ में काला काला गोल गोल कुछ दिखाई पड़ रहा था। लम्बा सा बाँस डाल कर किसी ने उसे हिला दिया। भ्रम दूर हो गया। सिर नहीं, वह तो ताड़ का फल था।

दूसरे दिन गंगासिंह बनारस गया। आर्य-समाज और अनाथालय में पता लगाया, पुलिस वालों से पूछा, कहीं पता न चला। शायद मज़दूरी की खोज में वह मिल में चली गई हो। इसलिये गंगासिंह काटन मिल में पहुँचा। फाटक पर पूछने लगा, एक ने इतना बतलाया—'पीली धोती पहने एक लड़की कल मिल में घुस रही थी। लेकिन चौकीदार ने उसे फाटक पर ही रोक दिया। फिर न जाने कहाँ चली गई।'

इसी बीच में एक बुड्ढा वहाँ आ गया। उसने दोनों की बातें सुनीं। फिर वह लड़की के बारे में सारी बातें पूछने लगा। लड़की की आयु, शकल सूरत, डील डौल, नाम, गाँव का नाम, बाप का नाम, सब कुछ उसने पूछा। गंगासिंह ने बाप का नाम न बतला

कर केवल माँ का नाम बताया। इस पर बुड्ढे को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—'कभी फिर आयेगी तो मैं ख़बर दूँगा।' बहुत पूछने पर बुड्ढे ने अपना नाम दुक्खी बताया। इससे अधिक अपना कोई परिचय उसने न दिया।

—:o:—

(६)

दूसरी दुनिया

जिस समय हीरा ने झोपड़ी का द्वार खोला, बाहर घना अन्धकार था। बाहर निकल कर उसने धीरे से किवाड़ बंद किये। कुछ देर वहीं खड़ी रही। न जाने क्या सोच रही थी। आगे चलने लगी। चार क़दम चल कर रुक गई, फिर लौट आई। किवाड़ को उसने ज़रा सा पीछे खिसकाया। डीवट पर जलते हुए दिये ने सिर हिलाया। मानो उसने कहा—'माँ को छोड़कर मत जा हीरा, वह रो रो कर मर जायगी।'

दीपक का आग्रह हीरा ने समझ लिया। उसने मन में कहा—'उसका मर जाना ही अच्छा है। आज वह मर चुकी होती तो इस झोपड़ी को छोड़ते हुए मेरा हृदय मछली की तरह क्यों छटपटाता?'

फिर उसने माँ की ओर देखा। जिन हाथों के फंदे से छूट कर वह बाहर आई थी वे अब तक उसी तरह फैले थे। शायद वे फिर हीरा को बाँधने की घात में थे। हीरा ने मन ही मन फिर कहा—'नहीं माँ, अब तुम मुझे जाने दो। तुम्हारे इन हाथों में बल नहीं है। वे मेरी रक्षा नहीं कर सकते। इन हाथों से मुझे कोई बल-

पूर्वक छीन ले जायगा। किसी के हाथ में पड़ने से पहले मुझे भाग जाने दो। लो, मैं चली। मैं तुम्हारे लिये मर चुकी और तुम मेरे लिये। हम तुम नीच हैं, अधम हैं, अछूत हैं। हमें मर ही जाना चाहिए।'

उसने धीरे से किवाड़ बंद किये। वह पैरों को ऐसे चलाने लगी जैसे गाड़ीवान बैलों को मार मार कर आगे की ओर चलाता है।

गाँव से निकल कर वह सड़क पर पहुँची। कुछ पता न चलता था कि रात कितनी है। वह दक्खिन की ओर चल पड़ी। सर्दी कांटे की तरह शरीर में चुभ रही थी। इसलिये वह दौड़ने लगी। इस प्रकार शरीर में गर्मी आई। किन्तु वह हाँफने लगी। फिर धीरे धीरे चलने लगी। इसी प्रकार बारी-बारी से, कुछ देर दौड़ कर, कुछ देर चल कर, वह काफ़ी दूर चली गई। चरचराहट सुनाई पड़ी। जान पड़ा कि आगे कोई बैलगाड़ी जा रही है। वह फिर दौड़ी। उसने बैलगाड़ी का पिछला हिस्सा पकड़ लिया। उसके सहारे चलने लगी।

बैलगाड़ी पर गुड़ लदा हुआ था। गुड़ के ऊपर टाट और टाट के ऊपर बोरी बिछा कर, रज़ाई और कम्बल ओढ़े एक बुड्ढा सो रहा था। उसे संदेह हुआ कि गाड़ी के साथ चोर लगा हुआ है।

'कौन है?' बुड्ढे ने आवाज दी।

'मैं हूँ।' हीरा ने उत्तर दिया।

बुड्ढे ने लालटेन उठाई। नीचे रोशनी डालकर उसने देखा।

'ऐसी रात में कहाँ जा रही है?'

'बनारस जा रही हूँ, माँ को देखने, वह बीमार है।'

'रात में ही चल पड़ी ? सवेरा क्यों नहीं होने दिया ?'

'सोचा था कि सवेरा हो चुका है।'

बुड्ढे ने हीरा को गाड़ी पर बैठा लिया और अपना कम्बल दोहरा करके उसके ऊपर डाल दिया। जिस समय गाड़ी वरना नदी के ऊपर, चौका घाट के पुल पर पहुँची, उस समय धूप निकल रही थी। बुड्ढे ने कहा—

'बनारस तो आ गया, तुझे कहाँ जाना है ?'

'मुझे उतार दो, अब मैं चली जाऊँगी।'

वह चौराहे पर उतरी। उसे कुछ न सूझा कि किधर जायँ। कोई साइकिल पर, कोई पैदल, बहुत से लोग पूरब की ओर जाते दिखाई पड़े। इनमें कुछ स्त्रियाँ भी थीं। हीरा भी पूरब की ओर चलने लगी। इस प्रकार चल कर वह काटन मिल के फाटक पर पहुँची। लोग फाटक में घुस रहे थे। वह भी घुसने लगी।

'पास दिखा।' चौकीदार ने कहा।

'चौकीदार का मुँह ताक कर वह लौट गई। थोड़ी देर पेड़ के नीचे बैठी रही। फिर उसे रेल की पटरी दिखाई पड़ी। इसी पटरी के किनारे-किनारे सड़क जा रही थी। इसी सड़क पर वह पूरब की ओर चल पड़ी। छोटी लाइन का स्टेशन मिला। लेकिन वहाँ कोई गाड़ी नहीं थी। स्टेशन की ओर देख कर वह फिर आगे बढ़ी और कुछ दूर चली गई।

कुछ लोग वरुणा में स्नान करके चले जा रहे थे। उनमें से एक की आँखें हीरा पर पड़ीं। उसने कहा—

'उस लड़की को देख रहे हो, छोटे मियाँ ?'

'कौन लड़की ? पीली धोती वाली ?'

'हाँ, अकेली है, उदास है, एक हाथ की चूड़ियाँ टूट चुकी हैं। कहीं दूर से आ रही है। बोलो, है कुछ हिम्मत ?'

'हिन्दू लड़की है। अब्बा इस हरकत को पसन्द नहीं करेंगे। लेकिन लड़की है खूबसूरत।'

'अगर तुम ज़रा सी हिम्मत करो, और अपनी बात पर अड़े रहो, तो हाजी मियाँ सब कुछ मान लेंगे ?'

'तो क्या करना चाहिए ?'

'तुम आगे जाकर उससे बोलना शुरू कर दो, फिर मैं सब कुछ सँभाल लूँगा।'

छोटे मियाँ की नाक के नीचे स्याही उठ रही थी। इसीसे उनकी आयु का अनुमान कर लीजिए। नहा कर, कुश्ती लड़कर आ रहे थे। कान के पास अब तक मिट्टी लगी हुई थी। याकूब ऐसे लोगों में से था जो जवानी ही में बुड्ढे दीखने लगते हैं। उसकी शकल से ही ग़रीबी टपकती थी।

हीरा की बाईं तरफ़, गज़ भर के फ़ासले पर छोटे मियाँ चलने लगे। आगे पीछे देखकर एक बार वह बोल पड़े—'रास्ता भूल गई हो क्या ?'

हीरा ने छोटे मियाँ की ओर देखा, किन्तु कोई उत्तर न दिया। छोटे मियाँ ने फिर कहा—'अगर बतला सको तो कुछ मदद कर सकता हूँ। कम से कम जहाँ तुम्हें जाना है, वहाँ पहुँचा दूँगा।'

'कहीं नहीं जाना है।' हीरा ने कहा।

'तब तुम्हारा कहीं घर नहीं है, इस तरह कब तक घूमती [illegible] ?'

हीरा से कुछ कहते न बना। उसकी आँखें भर गईं। तब तक याक़ूब भी पास पहुँच गया। उसने कहा—

'इस तरह सड़क में बातें करने से भीड़ लग जायगी। भीड़ देखते ही पुलिस आ जायगी और तुम लोगों को थाने पर ले जायगी। कुछ पूछना चाहते हो तो सड़क से हट जाओ।'

'यह ठीक कह रहे हैं। यहाँ से आगे पुलिस की चौकी है। तुम्हें इस हालत में देख कर पुलिस को जरूर शुबहा होगा और तुम आगे न जा सकोगी। पुलिस वाले बड़े पाजी होते हैं।'

भयभीत होकर हीरा रुक गई।

'सड़क पर रुकना भी ठीक न होगा।' याक़ूब ने कहा।

सड़क से दाहिनी तरफ़ एक गली थी। उसमें बिजली के दो खम्भे दीख रहे थे। उसी ओर हाथ उठा कर छोटे मियाँ ने कहा—

'बिजली का वह दूसरा खम्भा देखो, उस खम्भे के पास चलो। वहीं मैं एक बात कहूँगा, तुम्हारे फ़ायदे की। जितनी देर चाहे उस खम्भे के पास खड़ी होकर सोच लेना। मेरी बात मन में न बैठे तो चली आना। वहाँ से यह सड़क दीखती रहेगी।'

छोटे मियाँ दाहिनी ओर गली में घुसे। हीरा भी उनके पीछे-पीछे चली। खम्भे के पास पहुँच कर थोड़ी दूर पर दक्खिन की ओर छोटे मियाँ ने पक्का दो मंज़िला मकान दिखाया।

'वह मेरा मकान है, अगर मुझसे कुछ नहीं कहना चाहती

हो तो घर में मेरी माँ और भावज हैं। उनसे अपनी
सकती हो।' रहोईं।

छोटे मियाँ अपने घर की ओर चले। हीरा भी उन के
पीछे चली। इसी समय एक तीसरा आदमी लपकता हुआ तेजी
से आया और याक़ूब से बोला—

'देखो याक़ूब मियाँ, मैं इस लड़की को जानता हूँ। मैं तो कितनी
दूर से उसके साथ आ रहा हूँ और तुम उसे हज़म करने का उपाय
सोच रहे हो।'

'देखो, कन्हैया सिंह, मुझसे वेपर की मत उड़ाओ। हाँ, कुछ
सौदा पत्ती करना चाहते हो तो साफ़ साफ़ कह दो। हम लोग
तुम से वाहर थोड़े ही हैं।'

कन्हैया सिंह नर्म पड़ गये। वह याक़ूब से बातें करने लगे।
इधर हीरा छोटे मियाँ के पीछे पीछे घर में पहुँची। घर के वीच
में वड़ा सा आँगन था। आँगन में भैंस बँधी थी। आँगन के चारों
ओर वड़े वड़े कमरे थे। ऐसे ही दो कमरों में वनारसी साड़ियाँ
बुनने के करघे थे। तीसरे कमरे में बेंत की चटाई बिछी हुई थी।
इसके आधे हिस्से में दरी के ऊपर चाँदनी विछी हुई थी। एक
वड़ा सा तकिया दीवार से सटाकर रक्खा हुआ था। उसके सामने
एक छोटी सी पेटी पर तौलने का काँटा खड़ा था। पास ही रेशम
और तार का ढेर लगा था।

इसी कमरे के शेष आधे भाग में चार कुर्सियाँ पड़ी थीं और
उनके बीच में एक मेज़ थी। आँगन में पहुँच कर हीरा ने एक बार
चारों ओर आँखें दौड़ाईं, फिर छोटे मियाँ के पीछे पीछे सीढ़ियाँ

चढ़ने लगी। माँ से कुछ कहने का साहस न हुआ। छोटे मियाँ सीधे जमीला के कमरे में पहुँचे। हीरा बाहर खड़ी रही। छोटे मियाँ जमीला से बातें कर रहे थे। देवर की बातें सुनकर जमीला मुस्कुरा रही थी। अन्त में उसने कहा—'तुम फिकर मत करो, नीचे जाकर अपना काम देखो।'

छोटे मियाँ नीचे उतर गये। जमीला हीरा को अपने कमरे में ले गई। नसीमा को लिये ही लिये उसने पलंग पर कालीन बिछा दी। उसने हीरा को बैठाया, फिर मुस्कुरा कर पूछा—

'इसे अपना ही घर समझो। घर वाले तुम्हें क्या कह कर पुकारते थे?'

'मेरी माँ मुझे हीरा कहती थी।'

'कैसा प्यारा नाम है! कहीं हम तुम सगी बहिनें होतीं!' कहती हुई जमीला हीरा से सटकर बैठ गई।

'आपकी बहिन बनने लायक नहीं हूँ। मैं तो आपकी दासी हो सकती हूँ।'

'दासी क्या? मज़दूरनी? ठीक कहती हो, नेक लड़की बड़ी बहन से ऐसा ही बर्ताव किया करती है।'

'आपने समझा नहीं, मैं चाहती हूँ कि आप मुझे कोई काम दें।'

'सच! क्या काम करोगी? कुछ पढ़ना लिखना भी जानती हो?'

'थोड़ा थोड़ा।'

'तब तो मुझे पढ़ाती रहना। मैं बिल्कुल जाहिल हूँ। मेरे लिये तो काला अच्छर भैंस बराबर।' कहकर जमीला हँस पड़ी।

'मैं आपको क्या पढ़ाऊँगी !'

'तो मेरे मुनीम आते हैं। उन्हें छुड़ा दूँगी। वही खाता तुम्हीं सँभालना।'

'आप तो हँसी करती हैं।'

नसीमा बड़े ध्यान से हीरा को देख रही थी। उसकी आँखें हीरा की धोती के मोरों पर पड़ीं। हाथ बढ़ाकर नसीमा ने एक मोर पकड़ लिया।

'ओ हो, यह कब की दोस्ती ? जान न पहचान, खाला बीबी सलाम।' जमीला ने हँस कर कहा।

हीरा ने नसीमा को गोद में ले लिया। उसे उछाल उछाल कर वह खेलाने लगी। तब तक नाइन आ पहुँची। उसने कहा—

'क्या हुकुम है, जमीला बीबी ? छोटे मियाँ ने मुझे भेजा है।'

'सचमुच तुम्हारी ज़रूरत थी। यह देखो मेरी बहिन आई है। इसे ले जाओ, तेल उबटन मलकर नहलाओ।' जमीला ने कहा।

'यह सब तो कर दूँगी। लेकिन इसमें देर लगेगी। दोपहर हो जायगी। इनको कुछ नाश्ता तो करा दो, मुँह सूखा हुआ है।'

'हाय, मैं कैसी बेवक़ूफ़ हूँ ! अच्छा, इन्हें ले जाकर तुम अपना काम शुरू करो, वहीं नाश्ता लाती हूँ।'

हीरा को लेकर नाइन स्नानागार में गई। एक रेकाबी में चार मिठाइयाँ और गिलास में दूध लेकर जमीला पहुँची। हठ-पूर्वक हीरा को मिठाइयाँ खिलाकर उसने दूध पिलाया। फिर आकर उसने अपना ट्रंक खोला और रेशमी किनारे की साफ़ धोती निकाल कर हीरा को पहनाने के लिये दे आई। तेल उबटन मलकर

नाइन हीरा को नहलाने लगी। ऐसा सुन्दर सुगंधित साबुन हीरा ने कभी देखा भी न था। सिर से पैर तक वह साबुन के फेन से भर गई। नाइन ने ऊपर से गर्म-गर्म पानी डाला। मुलायम तौलिये से देह पोंछ कर उसने सारी पहनाई। फिर बाहर धूप में बैठाकर उसने बाल सँवारे। आँखों में काजल डाल कर बिलकुल गुड़िया सी सजाकर वह हीरा को जमीला के कमरे में ले आई। जमीला ने उसके हाथों में चार-चार चूड़ियाँ डाल दीं। फिर उसने हीरा को आइने के सामने खड़ी किया और नाइन से खाला' बीबी को बुलाने के लिये कहा। भारी शरीर की अधेड़ स्त्री ने कमरे में प्रवेश किया।

'देखिए; यह है मेरी बहिन, है न इन्दर की परी?' जमीला ने कहा। खाला बीबी ने सिर से पैर तक हीरा को देख कर कहा—

'इसके खाने का क्या इन्तजाम होगा?'

'खाना तो तैयार है?'

'यह तो हिन्दू लड़की है, तुम्हारे घर का खायगी?'

'मेरी बहिन है। खायगी क्यों नहीं? गोश्त रोटी खाओगी हीरा बीबी? बकरे का गोश्त पका है।'

'मैं मांस नहीं खाती।' हीरा ने कहा।

'अच्छा जाने दो। हम तुम दाल चावल, रोटी सब्जी खायँगी।' कह कर खाला बीबी और नाइन के साथ जमीला रसोई घर में गई।

कमरे में ऊँचा सा विचित्र ढंग का सन्दूक खड़ा था। बीच में जाली थी और उससे नीचे तीन घुंडीदार चाभियाँ लगी हुई थीं। नसीमा उन चाभियों की ओर बार-बार लपक रही थी। लेकिन

उसका हाथ नहीं पहुँचता था। नाइन के साथ जमीला आई। नाइन के हाथ में बड़ा सा थाल था। उसमें कई प्लेट थे। प्लेटों में दाल चावल रोटी सब्जी चटनी सब कुछ रक्खी हुई थी। जमीला के हाथ में गिलास और पानी का गडुआ था।

नसीमा की चेष्टा देखकर जमीला मुस्कुराई। उसने चाभी घुमा दी। सन्दूक़ में रोशनी चमक उठी। नसीमा शान्त होकर बैठ गई और ध्यान से देखने लगी। पहले सों-सों की आवाज़ हुई, फिर टन-टन बारह बजे, फिर कोई बोल उठा—'यह दिल्ली है, अभी आप ग्रामोफोन के कुछ रेकार्ड सुनेंगे।'

हीरा और नसीमा के साथ जमीला भोजन करने बैठी। उधर रेकार्ड बजने लगा—'आज मेरे जीवन में छाई बहार।'

'यही रेडियो है क्या?' हीरा ने पूछा।

'पहले नहीं देखा था क्या?' जमीला ने पूछा।

'पुस्तक में पढ़ा था।'

भोजन करके जमीला के साथ हीरा पलंग पर बैठ गई। नाइन पान लगा कर दे गई। एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा रेकार्ड बजा। गीत सुनते-सुनते हीरा की आँखों में आलस छा गया।

'खाने के बाद थोड़ी देर लेटना चाहिए।' जमीला ने कहा दोनों लेट गईं। केवल नसीमा बैठी रही। हीरा को नींद आ गई। उसके ऊपर एक रज़ाई डाल कर जमीला ने रेडियो बन्द कर दिया। नसीमा को लेकर वह ख़ाला बीबी के पास चली गई।

दो हृदय

तीसरे दिन हीरा ने इस परिवार में एक और सज्जन को देखा। लम्बा क़द, भारी शरीर, सिर और दाढ़ी के बाल कुछ काले और कुछ सफ़ेद थे। उनके चेहरे पर मुस्कुराहट थी।

'यह घर तुम्हें पसन्द है?' मुस्कुराते हुए उन्होंने हीरा से पूछा।

संकोच के साथ हीरा ने केवल 'हाँ' कह दिया।

'तब तो तुम्हें और भी तकलीफ़ होगी।' कह कर मुस्कुराते हुए वह चले गये।

'यही हाजी मियाँ थे क्या, जमीला?' हीरा ने पूछा।'

'हाँ, रात की गाड़ी से आये हैं।' जमीला ने कहा।

'उनकी बात समझ में नहीं आई।'

'कौन सी बात?'

'उन्होंने कहा—तब तो तुम्हें और भी तकलीफ़ होगी।'

इसी समय छोटे मियाँ ने आकर जमीला से कहा—'तुम्हें अब्बा बुला रहे हैं।'

'फ़िकर मत करो हीरा, हमारे हाजी मियाँ किसी को तकलीफ़ नहीं देते।' जाते जाते जमीला ने कहा।

हीरा कमरे में अकेली रह गई। गांव की घटनाओं के चित्र एक एक करके उसकी आंखों के सामने आने लगे। उनकी तुलना इस परिस्थिति से वह करने लगी। इस नई दुनिया में उसने जो स्नेह पाया, माँ की गोद के सिवा गांव के किसी कोने में उसने नहीं

पाया था। वह सोच रही थी—मैंने पहले ही कहा था—हमको बनाने वाला भगवान कोई दूसरा होगा माँ। उसकी दुनिया दूसरी होगी। वह हमको नीच नहीं समझेगा। चलो, उसी के पास चलें। माँ ने मेरी बात नहीं मानी। कहने लगी—तुम जहाँ जाओगी नीच समझी जाओगी। मेरी बात मान कर चली आती तो वह भी इस नई दुनिया को देखती। इस नई दुनिया का भगवान है 'अल्लाह'। 'अल्लाह कितना दयालु है! कोई भी भूला भटका प्राणी अल्लाह की दुनिया में आकर देख सकता है। अल्लाह वाले उसे हृदय से लगा लेंगे।'

हीरा स्वप्न में डूबी हुई थी। सहसा उसका ध्यान टूटा।

'ग़ल्तियों को माफ़ करना, हीरा।' जमीला ने आकर कहा। उसके मुँह पर भयानक उदासी छाई हुई थी।

'कैसी बात! तुम और ग़लती! तुम्हें कैसे समझाऊँ कि कितनी सुखी हूँ? क्या सारे मुसलमान तुम्हारे ही जैसे होते हैं जमीला?'

'नंगे भूखे सभी क़ौम में होते हैं हीरा। आते वक्त इसी मुहल्ले में टूटे फूटे पुराने झोपड़े तुमने नहीं देखे क्या? उनमें भी मुसलमान रहते हैं। उन झोपड़ों में भी कई हिन्दू लड़कियाँ पड़ी हैं। अपनी ग़लती से दूध भात की थाली में लात मार कर चली आई हैं और आज अपनी भूल पर आँसू बहाती हैं। ईद बक़रीद पर ही घर में घी आता है। अच्छा हुआ जो छोटे मियाँ तुम्हें मिल गये। याक़ूब के पल्ले पड़ जातीं तो दो चार दिन तुम्हें मिठाई खिलाता, सिनेमा दिखाता, फिर सारी जिन्दगी रोते बीतती।

'मेरा मतलब अमीर ग़रीब से नहीं था। मुझे तो तुम्हारे साथ भूखों मरना पड़े तो भी मेरा हृदय हँसता ही रहेगा।'

'बात को बहुत बढ़ा कर कहती हो हीरा।'

'बिल्कुल सच कहती हूँ।'

'मुझमें ही ऐसी कौन सी ख़ूबी है जो दूसरों में नहीं है?'

'ख़ूबी बतलाऊँ? जिसकी परछाईं पड़ने से भगवान भी भ्रष्ट हो जाता है, सगा बाप जिसको बेटी मानने से मुँह चुराता है, जिसका भाई जिसको बहिन मानते हुए लजाता है, उसी को तुमने बहिन बना लिया जमीला, जिसको सड़ते हुए नरक में भी जगह नहीं उसी को तुमने हृदय में रख लिया।'

'ऐसा तो हर मुसलमान कर सकता है।'

'यही तो मैं पूछ रही थी।'

'पूछने की क्या बात? यह तो सारी दुनिया जानती है। जर्मन हो या जापानी, भंगी हो या बरहमन, मुसलमान का दरवाज़ा, मुसलमान का दिल, हर एक के लिये हर वक्त खुला रहता है। जिसको कहीं जगह न हो वह यहाँ आ जाय, अपनी थाली की रूखी सूखी दाल दलिया हम उसके साथ बैठ कर खा लेंगे। जिनको हिन्दुओं ने अपने जिस्म का सड़ा हुआ बदबूदार फोड़ा समझ कर, काट कर, फेंक दिया उन्हें हमने उठा लिया। उन्हें हमने इन्सान बना लिया।'

'ऐसे हिन्दू और उनके भगवान कब मिट जायँगे?'

'भगवान को ऐसा न कहो हीरा, भगवान यानी अल्लाह को हम भी मानते हैं।'

'तुम नहीं जानती हो जमीला, हिन्दुओं का भगवान कैसा अत्याचारी होता है। किसी किसी को जन्म देकर वह कह देता है— जाओ, तुम, तुम्हारे बेटे पोते, तुम्हारे वंश में जो भी हों, सारी दुनिया का नरक साफ़ करें, कोई तुम्हारे मुँह पर लात मारे तो तुम उसे हाथ जोड़ना। यही तुम्हारा धर्म होगा। बिना किसी अपराध के वह इतनी बड़ी सज़ा दे डालता है। तुम्हीं बतलाओ, वह भगवान है या पत्थर ?'

'पत्थर के ज़ालिम भगवान को ज़ुल्म की पूरी सज़ा मिल चुकी है हीरा। जिन बेगुनाहों को उसने नरक साफ़ करने की बेजा सज़ा दी, वे बेचारे उस ज़ालिम भगवान के पास से भाग आये। उन्हें अल्लाह ने पनाह दी। वे अल्लाह के बन्दे बन गये और उन्हीं बंदों ने ज़ालिम भगवान से बदला ले लिया। उन मज़लूमों ने पत्थर के भगवान के टुकड़े टुकड़े कर डाले। अत्याचारी को अत्याचार का बदला मिल ही जाता है, तुम अल्लाह पर भरोसा रक्खो।'

'सचमुच, अल्लाह बड़ा न्यायी है जमीला। उसी की दुनिया टिक सकेगी। उसी के बन्दे फलते फूलते रहेंगे।'

'अल्लाह के बन्दों का फलना-फूलना हिन्दू नहीं सह सकता हीरा। इसीलिये तुम्हें इस घर से जाना होगा।'

'मैंने क्या किया जमीला ?'

'तुम्हारा क़सूर इतना ही है कि तुम हिन्दू हो। पेट की आग में तड़प तड़प कर तुम्हारा मर जाना हिन्दू देख सकता है लेकिन मुसलमान के घर में तुम्हें दूध और शहद की नदियों में ग़ोते लगाते हिन्दू नहीं देख सकता। उसकी आंखें जलने लगेंगी। हमारे हाजी

मियाँ ऐसा कोई काम नहीं करना चाहते जिससे हिन्दुओं का दिल जले। इसीलिये तुमको यहाँ से जाना होगा।'

'ओह, इतने पर भी हिन्दू कहता है कि हम हिन्दू मुसलमान भाई भाई हैं! कितना झूठ! कितना धोखा! नालायक़ बाप निर्दोष बेटी को घर से निकाल दे और यह चाहे कि चाचा भी बेटी को शरण न दे! मुझे निकालने से पहले एक बार हाजी बाबा से पूछ आओ जमीला, कहना—हिन्दुओं का दिल जलता है तो इस लड़की का क्या क़सूर?'

'तुम्हारा कोई क़सूर नहीं है बेटी।' हीरा के पीछे से हाजी मियाँ ने कहा। उनके साथ ख़ाला बीबी, छोटे मियाँ और रहीम सभी आ पहुँचे थे।

'तब मुझे क्यों निकाल रहे हो बाबा? दुनिया में मेरा कोई नहीं है।' हीरा ने कहा। यकायक सिसकियों की आँधी आ गई, आँसुओं का बाँध टूट पड़ा।

इसी समय नीचे से एक लड़के ने कहा—

'कन्हैया सिंह आये हैं। उनसे आज का वादा था।'

'कह दो उससे, हमें लड़कियों का दलाल नहीं चाहिये। यहाँ सारियों की ख़रीद बेच होती है, लड़कियों की नहीं। और जाकर इक्का तैयार कराओ।'

हाजी मियाँ की झल्लाहट कन्हैया सिंह सुन रहे थे। वह चुपके से उठ कर चले गये। हाजी मियाँ ने हीरा से कहा—

'कौन कहता है कि दुनियाँ में तुम्हारा कोई नहीं है? मैं हूँ तुम्हारा बाबा, और यह है तुम्हारा घर, जब चाहे चली आना।

लेकिन इस वक्त तुम्हें हिन्दुओं के घर जाना ही पड़ेगा, क्योंकि उनके साथ अपना लेन देन, दुआ सलाम है। हिन्दू मुसलमान सब की आँखों में मेरी इज्जत है। यहाँ छोटे मियाँ तुम्हें चुराकर लाये हैं। कम से कम हिन्दू लोग ऐसा ही समझेंगे। ऐसी हालत में तुम्हें रखलूँ तो सारे शहर में बदनामी होगी। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि तुम्हारे साथ मुझे हमदर्दी नहीं है। तुम्हें जो कुछ तकलीफ हो लिखना। उस वक्त तुम आना चाहोगी तो मैं तुम्हें ले आऊँगा। कोई भी रुकावट नहीं डाल सकेगा। यह लो मेरा पता।'

हाजी मियाँ ने हीरा को अपना कार्ड दिया जिस पर लिखा था—

हाजी पीर मुहम्मद
म्युनिसिपल कमिश्नर
बनारसी माल के व्यापारी,
बनारस।

कार्ड लेकर हीरा शान्त हुई। हाजी मियाँ ने फिर कहा—

'एक बात और कहता हूँ, ग़ौर करना। तुम्हारे घर का दरवाजा नीचा हो, आते जाते सिर में चोट लगती हो, तो उस घर में आग लगा कर भाग जाना पागलपन होगा। तुम्हें चाहिये कि दरवाज़े को ऊँचा कर लो। तुम्हारे हाथ में चन्दन लगा हो और उससे तुम्हारे बाप और भाई को बदबू आती हो, तो उनकी नाक कटाना ठीक न होगा। तुम्हें उनकी नाक का इलाज कराना चाहिये। जिन हिन्दुओं को तुमने अभी कोसा है वे हैं तो तुम्हारे भाई बाप ही! उनमें कोई ऐब है तो उन्हें छोड़कर मत भागो। खुद तकलीफ़ सहो

और उन ऐबों को दूर करो। ज़रा सोचो, आज तुम्हारे माँ बाप अन्धे हो जायँ तो तुम्हारा फ़र्ज़ क्या है? उन्हें ठोकर खाते छोड़कर भाग जाना या हाथ पकड़ कर उन्हें ठीक रास्ते पर ले जाना?'

'मैं भूल रही थी बाबा, ले चलिये, मुझे अन्धों के बीच में रख दीजिये। मरते मरते, जलते जलते, अन्धों की आँखें खोलती रहूँ।'

'शायद भगवान ने तुम्हें इसीलिये भेजा हो। तुम्हारे कोई नहीं है, इसीलिये सारी दुनियाँ को तुम माँ बाप और भाई समझ सकती हो। उनके बीच में ऐसी जिन्दगी बिताओ कि मरने के बाद भी हड्डियों से रोशनी निकलती रहे।'

'ऐसा ही हो, बाबा, आपका वरदान सच हो।'

'भगवान तुम्हारे साथ हो। हीरा को नीचे लाओ जमीला', कहकर हाजी मियाँ चले गये। जमीला के सिवा और लोग भी उनके साथ चले गये।

हीरा और जमीला उठीं। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा, दोनों ने एक दूसरे की ओर हाथ बढ़ाये। दोनों एक दूसरे को बाँध कर पलँग पर पड़ गईं। एक हिन्दू, एक मुसलमान, दो हृदय एक ही लहर में नाचने लगे।

हम तुम अनाथ दोनों

'चौदह साल की आयु, स्कूल में अमरबेलि और घर में उसे हीरा कहते थे।' यह सब तो दुक्खी को याद था लेकिन सवेरे से साँझ तक उसे मिल में काम करना पड़ता था। इसलिये कहीं जा न सका। पाँचवें दिन एतवार पड़ा। वह आर्यसमाज मन्दिर में गया। सारा वृत्तान्त सुन कर मंत्री जी ने कहा—

'मेरे पास तो ऐसी कोई लड़की नहीं आई है। लेकिन परसों पीरू हाजी ने किसी हिन्दू लड़की को अनाथालय पहुँचाया है। आप वहाँ मालूम कीजिये।'

उसी दम दुक्खी आनाथालय पहुँचा। वहाँ के मंत्री जी ने सारी बातें सुनीं। उन्होंने अमरबेलि उर्फ हीरा को बुलाकर कहा—

'इस वृद्ध को कोई बेटी बेटा नहीं है। तुम्हें रखना चाहते हैं। जाओगी?'

'हाँ।' वृद्ध की ओर देखकर अमरबेलि ने कहा।

'जो कुछ इनसे पूछना चाहो, पूछ लो।'

'कुछ नहीं पूछना है।'

'इक्का लेता आऊँ?' दुक्खी ने पूछा।

'दो चार कोस तो पैदल भी जा सकती हूँ।'

अपना नाम, पता और हस्ताक्षर देकर और अमरबेलि को लेकर दुक्खी घर आया। घर क्या, एक कोठरी थी। उसी के एक कोने में चूल्हा था और दूसरे कोने में खाट। अमरबेलि को कोठरी

में बैठा कर दुक्खी बाहर निकला। लोग कावुली से गर्म कपड़े ख़रीद रहे थे। एक ऊनी चादर और दो कम्बल दुक्खी ने भी ख़रीद लिये। लोगों का अनुमान था कि पन्द्रह रुपये का सामान होगा, लेकिन इस समय तो दुक्खी को दस ही रुपये देने पड़े, बाकी पन्द्रह रुपये की अदायगी के लिये कावुली ने तीन रुपये महीने का क़िस्त स्वीकार कर लिया था।

सामान लेकर दुक्खी घर पहुँचा। इतनी देर में अमरवेलि ने कोठरी को झाड़ पोंछ कर साफ़ कर डाला था। दुक्खी चूल्हा जलाने चला।

'यह मेरा काम है बाबा', अमरवेलि ने कहा।

'नहीं बेटी, तुम्हें इसके लिये नहीं लाया हूँ।'

'तो तुम्हारी कौन सी सेवा करूँ बाबा ?'

'जब तक हाथ पैर हिला सकता हूँ, तब तक मुझे कोई सेवा नहीं चाहिए।'

'फिर मैं क्या करूँ बाबा ?'

'मेरी बड़ी साध थी कि मेरे एक बेटी होती, मैं उसे स्कूल भेजता। साफ़ साफ़ कपड़े पहन कर, हाथ में किताबें लिये उसे स्कूल जाते देखता तो मैं कितना सुखी होता ! इसीलिये तुम्हें लाया हूँ। कल से स्कूल भेजूँगा, जाओगी ?'

'जाऊँगी बाबा, लेकिन घर का काम भी तो सीखना ही चाहिए।'

'सीख लेना। इस समय तो तुम रामायन सुनाओ, मैं रोटी सेकता हूँ।'

साँझ हो चुकी थी। वृद्ध के जीवन में आज पहली बार अमरबेलि ने दिया जलाया। मरघट सी झोपड़ी आज हँस उठी। दुक्खी ने रामायन खोलकर अमरबेलि के आगे रख दी, वह पढ़ती रही। तब तक दुक्खी ने दाल रोटी और आलू बैंगन का भरता तैयार कर लिया। दोनों ने भोजन किये।

एक ही खाट थी। 'तुम सोओ बेटी' 'नहीं तुम सोओ बाबा' इस विवाद को मिटाने के लिये खाट खड़ी कर दी गई। जमीन पर ही बिस्तर लगा कर बाबा बेटी सो रहे।

अगले दिन अमरबेलि को लेकर दुक्खी स्कूल पहुँचा। योग्यता की जाँच हुई। केवल अंग्रेजी नहीं जानती थी, अन्य सभी विषयों में सातवीं कक्षा के योग्य पाई गई। प्रधानाध्यापिका ने सातवीं कक्षा में उसका नाम लिख लिया और उसे अंग्रेजी सिखाने का विशेष प्रबन्ध कर दिया। अपने अपने अवकाश के समय गंगादेवी लिखना और अनुवाद सिखायेंगी, गायत्री वर्मा व्याकरण सिखाती रहेंगी और वीणा बनर्जी पुस्तकें पढ़ाती रहेंगी।

पुस्तकों और कापियों की सूची लेकर अमरबेलि बाहर आई। उसके साथ उसी दम दुक्खी चौक पहुँचा। पुस्तकें, कापियाँ, धोतियाँ, जम्फर, लालटेन, आइना, कंघी, चप्पल, बहुत सा सामान खरीद लिया गया। घर आकर दुक्खी चूल्हा जलाने लगा। आटा गूँधते हुए अमरबेलि ने कहा—

'दो ही दिन में पचास रुपये का सामान खरीद लिया गया बाबा, इतने रुपये कहाँ से आवेंगे?'

'सोच मत करो बेटी, हर महीने इतने रुपये थोड़े ही खर्च

होंगे। स्कूल की फीस माफ़ हो जायगी। इसके सिवा साल में दो जोड़ी धोती, दो कमीज़ और कुछ किताबें ही तो चाहिएँ? हाँ, एक चीज़ और, चार रुपये महीने का मकान। बीस पचीस रुपये में सारा ख़र्च चल जायगा। इतने ही रुपये हर महीने कमा लेता हूँ।'

'इस कोठरी का किराया चार रुपये देते हो बाबा?'

'इसके तो दो ही रुपये देता हूँ, लेकिन कल से दूसरे मकान में चलूँगा।'

'दूसरा मकान कब ढूँढ़ लिया बाबा?'

'आज दिन में, जब तुम्हारा इम्तहान हो रहा था। नया घर तुम्हारे स्कूल के पास ही है।'

'वहाँ से मिल तो दूर पड़ेगी।'

'तो क्या हुआ, पैर तो अपने ही हैं।'

इसी समय मिल का पहला भोंपा सुनाई पड़ा। दुक्खी भोजन करने बैठ गया। उसने कहा—

'आज से मेरा काम रात में है। इस सप्ताह में ऐसे ही चलेगा। अगले सोमवार से फिर बदल जायगा। मैं खाकर काम पर जाता हूँ। तुम भीतर से किवाड़ बन्द कर सो रहना। डरोगी तो नहीं?'

'नहीं!'

भीतर से किवाड़ बन्द कराकर दुक्खी काम पर चला गया।

'को जाने केहि भेष में, नारायण मिल जायँ ।'

—तुलसीदास

'क्या हुआ बाबा ?'

'कुछ नहीं, बेटी ।'

'कराह क्यों रहे थे ?'

'घुटने में दर्द रहता है ।'

'सर्दी लग गई होगी, लाओ सेंक दूँ ।'

'रहने दो बेटी ।'

दुक्खी मना करता रहा, लेकिन अमरबेलि पुस्तक बन्द करके उठी । चूल्हे में अग्निकण अब तक चमक रहे थे । उन्हें फूँक कर उसने लाल किया । पहले उसने गर्म तेल मला । फिर गर्म-गर्म रुई से घुटने सेंकने लगी । इसी प्रकार ग्यारह बज गये ।

'बस करो बेटी, अब सो जाओ ।' दुक्खी ने कहा ।

गर्म रुई घुटने पर बाँध कर लैम्प की बत्ती नीची करके वह लेट रही । कमरे में ख़ामोशी थी । यकायक सिसिकने की आवाज़ आई ।

'क्या है अमर ?' दुक्खी ने पूछा ।

कोई उत्तर न मिला । दुक्खी ने बत्ती ऊँची की । रोशनी फैल गई । अमर आँखें पोंछती हुई दिखाई पड़ी ।

'इस तरह रोती तुम्हें कई बार देख चुका हूँ अमर । मेरे साथ रहते तुम्हें साल भर हो गया । अब तक अपनी बातें साफ़ नहीं कहती हो ! बोलो क्या बात है ?'

'ऐसा ही दर्द माँ की पँसली में उठा करता है बाबा। मैं ही तेल गर्म करके मला करती थी। अब कौन करता होगा?'

'तुमने तो कहा था कि वह मर चुकी है।'

'ऐसा न कहती तो लोग उसी गाँव में पहुँचा देते। शायद अब मर भी चुकी हो।'

'नहीं अमर, अभी वह मरी नहीं है।'

'तुम्हें कैसे मालूम बाबा?'

'उसी तरफ़ का एक आदमी मिल में काम करता है। महीने में एक बार घर जाता है। तुम्हारा गाँव उसके रास्ते में पड़ता है। गाँव के पोखरे पर कोई पेटू पंडित दुकान करता है।'

'स्कूल के लड़कों के हाथ लाई गुड़ और खड़िया मिट्टी बेचता है। लोगों को पानी भी पिलाता है। पान बीड़ी भी रखता है।'

'बस, उसी की दुकान पर वह आदमी रुकता है और वहीं तुम्हारे गाँव की बहुत-सी बातें सुनता है।

'तब तो उसने मेरा पता भी दिया होगा।'

'मैंने तुम्हारी चर्चा उससे नहीं की। कहो तो कर दूँ।'

'नहीं'।

'लेकिन तुम्हारी माँ रोती है।'

अमरबेलि की आँखों में फिर आँसू उमड़ आये।

'तो क्या करूँ बाबा?' उसने कहा।

'लिख दो कि अच्छी तरह हूँ, कोई चिन्ता मत करना।'

'चिट्ठी के सहारे मुझे खोज लेगी और मुझे गाँव में ले जायगी।'

'चिट्ठी में अपना पता मत दो।'

राय पसन्द आई। उसने क़लम उठा लिया। और लिखा—

'माँ, जहाँ हूँ अच्छी तरह हूँ। मेरे लिये मत रोना। मुझे कोई दुख नहीं है। मुझे खोजने की कोशिश मत करना।

तुम्हारी—

हीरा'

वह चिट्ठी लिखकर सो गई।

अगले दिन घुटने का दर्द बढ़ गया। दुक्खी काम पर न जा सका। अमरबेलि भी स्कूल न जा सकी। पहले तो वह सेवा-सदन गई, दवा लेने के लिये। दवा लेकर आई तो उसे मलते-मलते दोपहर हो गई।

दूसरे दिन वह फिर अस्पताल गई। उस समय कम्पाउन्डर ने एक बच्चे की पट्टी खोल रक्खी थी। साल भर का बच्चा था। सात दिन पहले पकती हुई दाल की पतीली बच्चे के ऊपर उलट गई थी। ऊपर सिर और कंधा, नीचे आधे-आधे पैर बचे थे। बीच का सारा शरीर जल गया था। बचे हुए भाग में भी चेचक जैसी बड़ी-बड़ी फुन्सियाँ निकल आई थीं। उसकी तरफ़ देखते भी न बनता था। कम्पाउन्डर घाव को साफ़ करना चाहता था, लेकिन बच्चा चीख़-चीख़ कर छटक रहा था। अकेली माँ उसे पकड़े हुए थी। उसके भी हाथ कांप रहे थे। अमरबेलि ने बच्चे के दोनों पैर पकड़ लिये। कम्पाउडर नें घाव साफ़ कर दिये। फिर वह फुन्सियों को साफ़ करने लगा। एक फुन्सी को दबाते ही मवाद का फ़ौवारा छूट पड़ा। सारी छींटें अमरबेलि के आँचल पर पड़ीं। साथ ही बच्चे ने मल भी त्याग दिया। धोती का निचला सिरा भी

खराब हो गया। घाव दिखाने के लिये कम्पाउन्डर ने डाक्टर को बुलाया। डाक्टर की आँखें अमरबेलि पर पड़ीं। उन्होंने कहा—

'तुम्हारी सेवा का पूरा इनाम मिल गया। अब घर कैसे जाओगी ?'

'ऐसे ही चली जाऊँगी। घर जाकर धो लूँगी।'

'ऐसे ही मत जाना। धोती यहीं छोड़ देना। अस्पताल का आदमी धो देगा। बदलने के लिये तुम्हें धोती मिल जायगी।'

डाक्टर ने बच्चे को देखा। बच्चे की माँ ने कहा—

'ऐसी ही फुन्सियाँ मुझे भी निकल रही हैं।'

'बुखार भी रहता है ?'

'तबियत तो खराब मालूम होती है।'

माँ के मुँह में थर्मामीटर लगाकर डाक्टर ने अमरबेलि से कहा—

'तुम्हें क्या तकलीफ़ है ?'

'मुझे नहीं, मेरे बाबा के घुटने में दर्द है। कल भी दवा ले गई थी।'

'दर्द कम हुआ ?'

'अभी नहीं।'

दवा का टिकट माँग कर डाक्टर ने देखा और कहा—

'आज के दिन और यही दवा लगाओ। कल आकर हाल कहना।'

थर्मामीटर निकाल कर डाक्टर ने देखा और बच्चे की माँ से कहा—

'तुम्हें बुखार है, इन्हीं फुन्सियों की वजह से। तुमको और इस बच्चे को भी इन्जेक्शन लगेंगे। मँगा सकती हो तो दवा लिख दूँ, छ रुपये में दवा आ जायगी।'

'लिख दीजिये।'

डाक्टर ने दवा लिख दी। कम्पाउन्डर ने बच्चे को पट्टी बाँध दी। दूसरे नौकर ने अमरबेलि को स्नानागार दिखाया। वहाँ साबुन तौलिया और धोती सब कुछ था।

अगले दिन भी वह उसी बच्चे के ड्रेसिंग के समय पहुँची। ड्रेसिंग कराने के लिये उसने फिर बच्चे का पैर पकड़ा। डाक्टर ने देखा।

'कल के इनाम से जी नहीं भरा?' डाक्टर ने कहा।

'इनाम पाकर कभी जी भरता है?' उसने कहा।

'तो रोज चली आया करो।' विनोद के स्वर में डाक्टर ने कहा।

'आती रहूँगी।' गम्भीरता के साथ अमरबेलि ने उत्तर दिया।

डाक्टर ने बच्चे का घाव देखा। ड्रेसिंग हुआ। बच्चा और उसकी माँ को इन्जेक्शन लगा कर डाक्टर ने अमरबेलि से पूछा—

'तुम्हारे बाबा का दर्द कैसा है?'

'वैसा ही है।'

'क्या काम करते हैं?'

'काटन मिल में मज़दूरी करते हैं।'

'तुम क्या करती हो?'

'पढ़ती हूँ, आठवीं क्लास में।'

'घर कितनी दूर है?'

'यहाँ से चार फर्लाङ्ग ।'

'आज तुम्हारे बाबा को देखूँगा ।'

'ताँगा ले आऊँ ?'

'तुम रुक जाओ, अपनी कार में चलूँगा ।'

मकान में आगे एक कमरा था । इसी में चीड़ की मेज़ और लोहे की एक कुर्सी पड़ी थी । यही अमरबेलि की अध्ययनशाला थी । इस कमरे से आगे एक आँगन एक कोठरी और एक बरामदा था ।

डाक्टर खन्ना को अपनी कुर्सी पर बैठा कर अमरबेलि भीतर गई ।

'डाक्टर आये हैं बाबा, तुम्हें देखने के लिये ।'

'डाक्टर को ले आई ! फ़ीस कहाँ से देगी ?'

'देखा जायगा ।' कहकर अमरबेलि फिर डाक्टर के पास पहुँची । डाक्टर की आँखें दो पर्चों को पढ़ रही थीं । ये दोनों पर्चे कुर्सी के सामने दीवार पर चिपके हुये थे । उन पर लिखा था—

'ऐसी जिन्दगी बिताओ कि मरने के बाद भी हड्डियों से रोशनी निकलती रहे ।'

'मरते-मरते, जलते-जलते अन्धों की आँखें खोलती रहूँ ।'

'चलिये ।' अमरबेलि ने कहा ।

'बहुत बड़ी प्रतिज्ञाएँ तुमने कर रक्खी हैं ।' उठते-उठते डाक्टर खन्ना ने कहा ।

कोई उत्तर न देकर अमरबेलि ने सिर झुका लिया ।

'क्या तकलीफ़ है ?' दुक्खी को देख कर डाक्टर ने पूछा ।'

'यहाँ, यहाँ दर्द है हुजूर, उठा बैठा नहीं जाता। रात भर नींद नहीं आती। काम धंधा सब बन्द है सरकार।'

डाक्टर ने रोग की परीक्षा की। फिर कागज़ पर दवा लिखकर कहा—अभी अस्पताल खुला होगा, जल्दी जाओ और यह दवा ले आओ।'

अमरबेलि चली गई। डाक्टर ने दुक्खी से कहा—

'यह तुम्हारी लड़की है?'

'भगवान की लड़की है सरकार।'

'होनहार दीखती है।'

'आप ही जानें सरकार, जैसी बनाओगे वैसी बन जायगी। मैं तो कुली हूँ।'

अमरबेलि दवा लेकर आई। डाक्टर ने प्लास्टर लगा दिया और कहा—'एक जगह पड़े रहना। पट्टी खसकने न पावे। दर्द जरूर बन्द हो जायगा।'

अमरबेलि ने साबुन तौलिया और पानी पहले से ला रक्खा था। हाथ धोकर डाक्टर खन्ना जाने लगे। दो रुपये हाथ में लेकर दुक्खी ने कहा—

'कहते हुये सरम लगती है सरकार, मेरे पास तो यही है।'

'रक्खे रहो, घी खाना।' कहकर डाक्टर खन्ना चले गये।

दूसरे दिन दुक्खी के घुटने में दर्द नहीं था। हाल कहने के लिये अमरबेलि अस्पताल गई। उस दिन भी उसने बच्चे का ड्रेसिंग कराया। वहाँ से लौट कर वह चूल्हा जलाने चली तो दुक्खी ने कहा—

'कई दिन नागा हो चुका है। आज तुम स्कूल जाओ बेटी। कुछ बना रक्खूँगा, दोपहर में आकर खा जाना।'

अमरबेलि स्कूल गई। दोपहर में घर आ रही थी। दूर से ही घर के पास भीड़ दिखाई पड़ी। उसका दिल धड़कने लगा। निकट आकर उसने जो दृश्य देखा उससे उसके होश उड़ गये।

भीड़ के बीच में एक काबुली ने दुक्खी की गर्दन पकड़ रक्खी थी। लोग तमाशा देख रहे थे। लेकिन कुछ कहने वाला कोई भी न था। गालियाँ दे देकर वह काबुली कह रहा था—

'हम इस बदज़ात का बोटी काटेगा। हम अपना रुप्पी लेगा। हम इसको नहीं छोड़ेगा।'

अमरबेलि को देखते ही भीड़ में से एक ने कहा—

'वह देखो, बुड्ढे की बेटी आ रही है।'

'बेटी को पढ़ाने के लिये बुड्ढे के पास पैसे हैं और कर्ज़ चुकाने के लिये नहीं। सचमुच बुड्ढा बेईमान है।' दूसरे ने कहा।

'ताकती क्या है? घर से रुपये लाकर बाप को छुड़ाती नहीं?' तीसरे ने कहा।

अमरबेलि जानती थी कि घर में कुछ आने ही बचे हैं। पड़ोस में उसका किसी से लेन देन भी न था। लोगों की बातें सुन कर काबुली ने अमरबेलि की तरफ़ घूर कर देखा और कहने लगा—

'यह बुड्ढे का बेटी है? यह लड़की हमारे घर जायगा? यह लड़की हमारे घर तक जायगा तो हम बुड्ढे को छोड़ देगा। बुड्ढा हमको रुप्पी दे, नहीं तो अपना लड़की हमारे साथ भेजे। नहीं तो हम इस बदज़ात का बोटी काटेगा।'

बुड्ढे की बातें सुन कर तमाशबीन बेहयाई की हँसी हँस रहे थे। अमरवेलि पीछे हट गई। इसी समय मोटर का हौर्न सुनाई पड़ा। कार भीड़ के पास आकर रुक गई। भीड़ देख कर डाक्टर खन्ना कार से निकल आये। सामने अमरवेलि दिखाई पड़ी। उन्होंने पूछा--

'यहाँ भीड़ क्यों है ?'

अमरवेलि की आँखों से आँसू गिरने लगे। वह रोने लगी। लोगों ने डाक्टर के लिये रास्ता छोड़ दिया। डाक्टर ने काबुली को देखा और बुड्ढे को पहचाना। उन्होंने कहा—

'क्या कर रहा है खान ?'

'अपना ज़र वसूल कर रहा है।'

'इसी तरह वसूल किया जाता है ?'

'हम इसी तरह वसूल करता है।'

'कितने रुपये पाने हैं ?'

'पाँच रुपये।'

'यह ले।'

पाँच रुपये का नोट पकड़ा कर डाक्टर खन्ना कार में बैठ गये। काबुली से दुक्खी की गर्दन छूटी। उसे लेकर अमरवेलि घर के भीतर चली गई।

वह इतना अपमानित हो चुकी थी कि दूसरे दिन वह बाहर न निकल सकी। किसी प्रकार आँखें नीची करके वह स्कूल तो चली गई लेकिन अस्पताल न जा सकी। स्कूल से आकर सायंकाल घर में उदास बैठी थी। यकायक डाक्टर खन्ना उसके द्वार पर आ

गये। वह आदर के लिये उठी। कुर्सी पर बैठ कर डाक्टर ने कहा—

'तुमसे कुछ बातें पूछना चाहता हूँ।'

अमरबेलि की आँखों ने जिज्ञासा का भाव प्रगट किया।

'तुम्हारा खर्च कैसे चलता है?' डाक्टर ने पूछा।

'बाबा मिल में काम करते हैं। महीने में पन्द्रह बीस रुपये कमा लाते हैं। उसी से हम लोगों का खर्च चलता रहा है। इधर दो तीन महीनों से बार बार बीमार पड़ रहे हैं। इसी से दिक्कत पड़ रही है।'

'तुम्हारे बाबा अब अधिक मिहनत नहीं कर सकते। बुढ़ापे में आराम की जरूरत पड़ती है। तुम कुछ आमदनी नहीं कर सकती हो?'

'बाबा मुझे कोई काम नहीं करने देते। वह मुझे पढ़ाना चाहते हैं। स्कूल से छः रुपये स्कालरशिप मिलते हैं और फ़ीस माफ़ है। जुलाई से नवीं क्लास में पहुँच जाऊँगी, तब दस रुपये स्कालरशिप मिलेंगे। हेड मिस्ट्रेस ऐसा ही कह रही थीं।'

'दस रुपये में तुम्हारा और तुम्हारे बाबा का काम चल जायगा?'

अमरबेलि कोई उत्तर न दे सकी। डाक्टर खन्ना ने फिर कहा—

'सेवा-सदन को तुम जैसी एक लड़की की जरूरत है। पैसे के लिये काम करने वाले बहुत से मिल सकते हैं, लेकिन सच्ची लगन के साथ सेवा करने वाले बहुत कम मिलते हैं।'

'मेरे योग्य जो सेवा हो मैं उसके लिये तैयार हूँ।'

'तभी तो कह रहा हूँ। लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी पढ़ाई भी जारी रहे। सवेरे ही रोगियों की भीड़ लगती है। उसी समय दो घंटे के लिये आ जाया करो। उसके बाद स्कूल चली जाया करो।'

'लेकिन गर्मियों में सवेरे का स्कूल हो जाता है।'

'उन दिनों चार बजे आ जाया करो। इस सेवा के बदले सेवा-सदन से अभी बारह रुपये मासिक दिला सकता हूँ। दो चार महीने में काम सीख जाओगी तो वेतन बढ़ जायगा।'

'मेरे ऊपर आपका उपकार होगा।'

'नहीं, सेवा-सदन उपकार मानेगा। हाँ, एक बात और, नवीं कक्षा में साइंस जरूर लेना।'

'मैं भी ऐसा ही सोच रही थी।'

'तो कल से आ जाना। पिछली बार दो पर्चे इस दीवार पर मैंने देखे थे। वे कहाँ गये?'

'वह यहाँ टाँगने की चीज़ नहीं थी, इसलिये हटा दी।'

यहाँ से हटा दी तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन हृदय से न हटाना।' कहकर डाक्टर खन्ना चले गये।

—:०:—

(१०)

ख़ुदा जाने जाता कहाँ अस्प हस्ती, लगी गर न होती इनाने मुहब्बत

पत्र की चर्चा सारे गाँव में थी। दिमाग़ी कसरत के लिये लोगों को अच्छा ख़ासा मसाला मिल गया था। एक एक शब्द पर लोग दूर तक दिमाग़ दौड़ाते थे।

'जहाँ हूँ, अच्छी तरह हूँ।'

जहाँ से क्या मतलब? कोठे पर?

'मुझे खोजने की कोशिश मत करना।'

ऐसा क्यों ? लजाती है क्या ? गृहस्थ की लड़की कोठे पर बैठने लगे तो वह यही चाहेगी कि घरवाले उसका पता न पावें।

'अच्छी तरह हूँ........कोई दुख नहीं है।'

सो कैसे ? ऐसा उसमें कौन सा गुण था ? ऐसे गुण उसमें दो ही थे--रूप और आयु। पन्द्रह साल की लड़की अपने रूप को रुपयों में बदलने लग जाय तो उसे किस सुख की कमी हो सकती है ?

इन विचारों की पुष्टि के लिये पेट्रू पंडित का हिमालय जैसा तर्क था। वह कहते--कहीं नीम के पेड़ में आम फल सकता है ! फुलिया की गोद में क्या सीता-सावित्री जन्म लेंगी ! उनका दावा था कि साँझ की रोशनी में कोई चौक जाकर देख ले, किसी न किसी खिड़की में वह अवश्य दीख जायगी।

ज्यों ज्यों दिन बीतते गये ये चर्चे भी मिटते गये। साल समाप्त होते होते सारा गाँव ही इस क़िस्से को भूल गया। लेकिन वह डायन अपनी हीरा को कैसे भूल सकती थी ! उस 'अपत कटीली डार' में बेटी के पत्र ने नवजीवन का संचार कर दिया। बेटी का पत्र तीन साल का पुराना हो गया, फिर भी उस पत्र को किसी न किसी से पढ़वा कर सुनती थी। हर पढ़नेवाले से वह यह भी पूछती--'इस पर मुहर कहाँ का है ?' कोई कोई कह देता--'बनारस का दीखता है।' वह फिर पूछती--'बनारस जाऊँ तो उसका पता चल जायगा ?' उत्तर मिलता--'बिना मुहल्ला जाने इतने बड़े शहर में तू कैसे खोज लेगी ?'

कोई कोई दयालु कह देता--'वह जीती है और उसे कोई

दुख नहीं है। इतनी खबर तेरे लिये काफ़ी नहीं है क्या? उसे क्या ज़िन्दगी भर गले में बाँधे रहेगी? नहीं जानती कि लड़की पराया धन होती है?'

'ठीक तो, जहाँ रहे सुखी रहे। और हमें क्या चाहिए!' कहकर वह अपने मन को समझा लेती।

उसी पत्र के सहारे फुलिया ने तीन साल काट लिये। चौथे साल ऐसी आँधी आई कि काग़ज़ की नाव भी डूबने लगी। होली के दिन बनारस में दंगा हो गया। गाँव में भयानक खबरें आने लगीं। मंदिर तोड़े गये। मस्जिदें तोड़ी गईं। घर फूँके गये। दुकानें लूटी गईं। माँ के लाल लूटे गये। ललनाओं की लज्जा लूटी गई। रेल से उतरनेवाले यात्रियों को छुरे भोंके गये। एक ही घर में दस प्राणी जीते ही जला दिये गये। शहर में फ़ौज आई, गोलियाँ चलीं। पचास मरे दो सौ घायल हुए।

ऐसे समय हीरा को किसने बचाया होगा? भगवान ने? फुलिया की हीरा पर कहीं भगवान को भी दया आ सकती है!

शहर से आई हुई खबरें फुलिया की आँखों में भयानक और वीभत्स घटनाओं के चित्र खड़ा कर देतीं। सो जाती तब वे चित्र साकार होकर नाचने लगते। कभी देखती झोंपड़ी में आग लगी है और उसके भीतर हीरा चिल्ला रही है। कभी देखती कोई गुंडा हीरा को लूट कर भाग रहा है। कभी देखती कि कोई कसाई उसे छुरे का निशाना बना रहा है। ऐसे स्वप्न देखकर वह चीख़ पड़ती।

दंगा समाप्त हुए भी महीना भर हो गया। जीती होती तो ज़रूर लिखती—'बच गई हूँ माँ, चिन्ता मत करना।' हर शुक्रवार और

सोमवार को फुलिया चौबे की राह देखती। चिट्ठियों का झोला लिये चौबे सामने से निकल जाते, बेचारी ताकती ही रह जाती। आज भी शुक्रवार था। फुलिया ताक रही थी। दूर पर चौबेजी आते दिखाई पड़े। फुलिया को देखते ही मुस्कुरा उठे। उस मुस्कुराहट में फुलिया ने न जाने क्या देख लिया। उनके एक-एक क़दम के साथ उसका हृदय उलझ रहा था। उसे शंका हो रही थी—'कहीं आज भी न लौट जायँ।' चौबेजी सामने आकर रुक गये। हृदय के आवेग में फुलिया के मुँह से कोई शब्द न निकला। झोले में हाथ डालकर चौबेजी ने कहा—'मनीआर्डर है, फुलिया।'

'ओह मेरी बेटी जीती है क्या चौबे ? सच कहो, सच ? सचमुच तुम बोल रहे हो ? नहीं, यह सपना है।'

'सपना नहीं, सुन, ये रुपये खन-खन बोल नहीं रहे हैं क्या ? ले, बजाकर देख, यह देख उसके हाथ के अक्षर, यह उसी का नाम है।'

फुलिया ने दसों रुपये मुट्ठी में लेकर सिर में मार लिये। रक्त से हाथ लाल हो गया।

'हाँ, चोट भी लगी, खून भी निकला। सपना होता तो अब तक जाग चुकी होती। तुम सचमुच चौबे बोल रहे हो। बतला दो, चौबे, कहाँ है मेरी हीरा ?'

'सेवा-सदन में।'

'यह कोई महल्ला है ?'

'एक अस्पताल का नाम है।'

'हाय, हीरा अस्पताल में है ! सपने सच ही निकले । उसे कहाँ-कहाँ चोट है ?'

'चोट तो नहीं लिखा है ।'

'हाँ, न लिखा होगा । ऐसी बात लिखकर माँ को रुलानेवाली लड़की नहीं है । ये रुपये तुम ले लो, चौबे, इनके बदले मुझे बेटी के पास पहुँचा दो । एक बार आँख भर देख लूँ । फिर उसी की लाश पर सिर पटक कर मैं भी उसी के साथ चली जाऊँगी ।'

'अधीर न हो, फुलिया, ये रुपये तुझे हीरा के पास पहुँचा देंगे । इस बार भी उसने लिखा है—'मैं सुखी हूँ, माँ, मेरे लिये रोना मत । अब से हर महीने कुछ रुपये भेजती रहूँगी ।' जान पड़ता है उसने कहीं नौकरी कर ली है । कल तू बनारस चली जा । वहाँ किसी इक्के-वाले से कहना । वह चार आने लेगा और तुझे सेवा-सदन पहुँचा देगा । अभी मेरे साथ स्कूल तक चल, वहाँ इस काग़ज़ पर तुझे दो जगह अँगूठे लगाने होंगे ।'

फुलिया चौबे के साथ स्कूल गई । अंगूठे लगाये । उसने एक चवन्नी चौबे को भी दी । लौटते समय पेटू पंडित से चार पैसे का साबुन लेती आई । घर आते ही मैली धोतियाँ लेकर तालाब पर गई । उन्हें धो लाई । रात ही रात उसने फटी हुई धोती को सी डाला । मालूम नहीं, रात में उसे नींद भी आई या नहीं । घड़ी भर रात थी तभी वह चल पड़ी । दोपहर तक बनारस पहुँच गई । उसने वरुणा में स्नान किया । फिर सड़क पर आकर इक्के में बैठी । थोड़ी देर बाद एक फाटक के सामने इक्का रोककर इक्केवाले ने कहा—यही सेवा-सदन है ।

इक्के से उतरकर फुलिया फाटक में घुसी। बारामदे में जाकर इधर उधर ताकने लगी।

'किसे ढूँढती है?' किसी ने पूछा।

'हीरा को।'

'हीरा कौन?'

'असरवेलि।'

'आ जा मेरे साथ।'

उसके पीछे-पीछे फुलिया चली। बाहर निकलकर उसने कहा—

'वह देख, लाल चबूतरा, वही घर है।'

चबूतरे पर चढ़कर फुलिया ताकने लगी। कमरे में कुर्सी पर बैठी हुई किसी स्त्री को उसने देखा। वह कुछ लिख रही थी—उसका मुँह दीवार की ओर था, इसलिये नहीं दीखता था। उसकी कलाई पर घड़ी चमक रही थी। दूसरी घड़ी मेज़ पर टिक्-टिक् कर रही थी। फुलिया ने सोचा—किसी दूसरे के चबूतरे पर आ गई हूँ। यह हीरा नहीं है। हीरा इतनी बड़ी कब हो गई? इसका रंग भी हीरा से साफ है। चाल-ढाल, कपड़ा-लत्ता, बाल की सजावट सब नया है, सब शहर का है। गँवार लड़की यह सब क्या जाने! फिर दो-दो घड़ियाँ उसने कब ख़रीद लीं! इतना ज्यादा उसने पढ़ा भी नहीं था जो कहीं मास्टरनी हो जाती। यह तो और कोई है। इससे कुछ पूछूँ तो डाँट न दे।'

इसी असमंजस में फुलिया पड़ी हुई थी कि एकाएक उसके कान में अमृत की तरह टपक पड़ा—'माँ!'

'बेटी!' कहती हुई फुलिया कमरे में घुस गई। बेटी कुर्सी से

उठी। माँ ने उसे गोद में भर लिया। उसका हृदय ज़ोर से धड़कने लगा। माँ बेटी एक दूसरी को आँखों के पानी से धोने लगीं।

हृदय का आवेग कम हुआ। बेटी माँ को कुर्सी पर बैठाने लगी। माँ को कुर्सी पर बैठने की आदत न थी। वह जमीन पर बैठ गई। बेटी ने एक दरी बिछा दी। माँ को बैठाकर वह बाजार से मिठाई ले आई। लेकिन मारे हर्ष के माँ से कुछ खाते न बना।

'थक गई हो, माँ, तुम लेट रहो। तब तक मैं काम पूरा कर आऊँ।'

'क्या काम है हीरा ? मैं कर दूँ।'

'बाबा को दवा पिलानी है और फिर अस्पताल जाना है।'

'बाबा कौन ?'

'एक वृद्ध हैं माँ, चार साल से उन्हीं के साथ रहती हूँ। पहले दो साल तक वह मुझे कमा कमा कर खिलाते और पढ़ाते रहे। अब इधर दो साल से अधिक दुर्बल हो गये हैं। बीमार रहते हैं। उनसे कोई काम नहीं होता। मेरे सिवा उनको और कोई नहीं है। जब तक उनके हाथ-पैर काम देते थे तब तक उन्होंने मुझे कोई काम करने नहीं दिया। इधर दो साल से अस्पताल में कुछ काम करने लगी हूँ। पन्द्रह रुपये वहाँ से मिलते हैं और सोलह रुपये कालेज से मिलते हैं। इसी से मेरा और बाबा का ख़र्च चलता है। इसके सिवा हर महीने कुछ न कुछ और भी मिल जाता है।'

'कैसे ?'

'जानती हो यह फ़ाउन्टेन पेन और घड़ियाँ मुझे कैसे मिली

हैं ? एक लड़की के फोड़े का आपरेशन हुआ था। उसकी जाँघ पर बड़ा भारी फोड़ा निकल आया था। मैं ही उसके घर पट्टी बाँधने जाती थी। दस दिन में वह अच्छी हो गई। उसका बाप मुझे दस रुपये देने लगा। मैं नहीं ले रही थी। इसी मेज पर रुपये रखकर वह चला गया। वे ही रुपये मैंने तुम्हारे पास भेजे थे। यह कलम और ये घड़ियाँ भी इसी तरह रोगियों ने दी हैं।'

'उनका भी आपरेशन हुआ था ?'

'दंगे में घायल हुए थे। महीना भर पहले यहां बड़ा भारी दंगा हुआ था।'

'उस समय तू कहाँ थी ?'

'इसी अस्पताल में, एक मिनिट की भी फ़ुरसत नहीं मिलती थी। पचासों घायल आ गये थे। रात-रात भर जागना पड़ा। अस्पताल में इतने रोगियों के लिये जगह भी नहीं थी। एक किराये का मकान लेकर उन्हें रक्खा गया।'

'बहुत छोटा अस्पताल है क्या ?'

'पहले यह कोई अस्पातल नहीं था।'

'खन्ना बाबू यहाँ के बड़े नामी डाक्टर हैं। रुपयेवाले रुपये देकर उन्हें घर पर बुला लेते हैं, लेकिन ग़रीब बेचारे क्या करते ! उनके लिये खन्ना बाबू ने अपने घर पर ही दो घंटे का समय दे रक्खा था। इस तरह उनके घर पर ग़रीब रोगियों की भीड़ जुटने लगी। वहाँ अधिक जगह न थी। तब कुछ लोगों ने चंदा करके ग़रीबों के लिये यह छोटा सा अस्पताल बनवा दिया। इसीको सेवा-सदन कहते हैं। इस सेवा-सदन से खन्ना बाबू कोई तनख़्वाह

नहीं लेते, बल्कि अपने पास से कुछ रुपये देते रहते हैं। अब यहाँ की म्युनिसपैल्टी भी सेवा-सदन को कुछ रुपये देने लगी है। उसी में से पन्द्रह रुपये मुझे भी मिलते हैं। अब तुम लेट रहो माँ, तब तक अस्पाल होती आऊँ।'

'बाबा को दवा नहीं पिलायेगी ?'

'अस्पताल का समय हो गया। वहाँ से आकर बाबा को दवा पिलाऊँगी।'

'मैं भी चलूँ ?'

'अच्छा चलो! यह धोती बदल डालो।'

ट्रंक खोलकर हीरा ने खद्दर की एक साफ़ धोती निकाली। उसे पहनकर फुलिया हीरा के साथ अस्पताल गई।

—:o:—

(११)

खोया हुआ स्नेह

एक बड़े कमरे में चारपाइयाँ पड़ी हुई थीं। एक चारपाई पर नवजात शिशु रो रहा था। जच्चा के मुँह में थर्मामीटर लगाकर बच्चे को गद्दे समेत उसने उठा लिया। उसे हिला-हिला कर कहने लगी—'रोते हो, बहुत भूख लगी है ? लो पियो।' उसने बच्चे के मुँह में दूध की शीशी का निपुल डाल दिया। बच्चा उसे चूसने लगा। बच्चे को रखकर वह जच्चे की नाड़ी देखने लगी। फिर उसने थर्मामीटर निकालकर देखा और कहा—

'आज तो बुख़ार नहीं है, कुछ खाओगी ?'

'नहीं।'

'थोड़ा दूध जरूर पीना। तभी अपने गुड्डे की भूख मिटा सकोगी। नहीं तो वह रात भर किसी को सोने न देगा।'

सिरहाने चार्ट टँगा हुआ था। अमरबेलि उसे भरने लगी तब तक जच्चे ने पूछा—

'अभी कितने दिन यहाँ रहना होगा?'

'तबियत बहुत घबरा रही है क्या? कहो तो उन्हें यहीं बुला दूँ।' कहकर अमरबेलि मुस्कुराई। दूसरी खाट की ओर बढ़ते हुए उसने कहा—'घबराओ नहीं, कल परसों तक चली जाओगी। लेकिन घर जाकर कुछ दिन परहेज के साथ रहना। रहोगी?' कहकर एकबार फिर उसने जच्चा की ओर देखा और मुस्कुरा दिया।

दूसरी खाट पर एक आठ वर्ष का बालक था। उसकी ठुड्डी पकड़कर अमरबेलि ने कहा—

'कहो भाई ऊधमसिंह, अच्छे हो?'

'मेरा नाम ऊधमसिंह नहीं है।'

'तो क्या है?'

'सर्वेन्द्रराय।'

'बड़ा अच्छा नाम है—'सरवन्दर राय'।'

'तुम्हें कहना नहीं आता।'

'तो इसको और सीधा कर दो। सर को उड़ा दो, केवल 'वन्दर राय' रहने दो।'

'मैं वन्दर नहीं हूँ।'

'झूठ, तुम्हारा नाम भी बन्दरराय और काम भी बन्दर का सा।'

'बन्दर का सा कौन सा काम मैंने किया ?'

'तो पैर की हड्डी कैसे टूटी ?'

'चबूतरे पर से कूद रहा था।'

'तो इस बार पेड़ से कूदना।' कहकर उसके मुँह में थर्मामीटर लगा दिया और नाड़ी देखने लगी। उसका भी चार्ट भरकर आगे गई।

तीसरी चारपाई पर एक बुड्ढी थी।

'अब तो दर्द नहीं होता ?'

'नहीं बेटी।'

'कैसे गिरी थी ?'

'पंचगंगा घाट की सीढ़ी पर पैर लड़खड़ा गया।'

'सीधे गंगा में नहीं पहुँची ? गंगा-लाभ कर अब तक स्वर्ग में गई होती।'

'और अब कहाँ हूँ ?'

'नर्क में।'

'नहीं, मैं सरग में ही हूँ ! जहाँ तुम जैसी बेटी मिले वहाँ नरक कैसे रह सकता है ?'

'मरने के दिन निकट आये, अब भी चापलूसी करती है ?'

'तो औरों से पूछ लो।'

दूसरी वृद्धा ने पहली का समर्थन किया। उसने कहा—

'सच तो कहती है, जितनी सेवा तुम करती हो उतनी सगी

बेटी भी न कर सकेगी। माँ-बाप के लिये रात-रात भर जागने वाले बेटी-बेटे बहुत कम मिलेंगे। तुम्हारा मुंह देखते ही हमारा दुख पाप दूर हो जाता है। भगवान ने जैसी शकल दी वैसा ही हृदय भी दिया और......।'

'वैसा ही दूल्हा भी दे देगा।' जच्चा ने चुटकी का बदला लिया।

'अच्छा, आप भी बोल उठीं !' अमरवेलि ने कहा।

अमरवेलि ने हर एक रोगी का चार्ट भर लिया। फिर वह प्याली में दवाइयाँ ला-लाकर बारी-बारी से हर एक को पिलाने लगी। फुलिया अब तक मुख्य द्वार के पास स्टूल पर बैठी थी। एक वृद्धा ने कहा—

'इन्हें क्यों बैठा रक्खा है ? इन्हें भी दवा देकर छुट्टी दीजिए।'

'इन्हें दवा नहीं चाहिए। यह तो तुम लोगों को देखने के लिये आई हैं।'

'कहाँ से ?'

'कहाँ से बताऊँ ? यह मेरी म ।'

'हैं, तुम्हारी माँ हैं ! तुम इन्हीं की बेटी हो !' कहती हुई एक वृद्धा उठी और फुलिया के पास पहुँ

'आप बड़ी अच्छी बेटी की माँ हैं।' कहकर उसने फुलिया का पैर छू लिया।

उसका अनुकरण करने के लिये दूसरी वृद्धा भी उठने लगी। अमरवेलि ने यह सब देख लिया उसने कहा—'तुम लोग यह क्या तमाशा कर रही हो ? यहाँ से हट जाओ माँ, नहीं तो उठ-उठकर ये लोग अपना रोग बढ़ा लेंगी।'

फुलिया कमरे से बाहर चली गई। रोगियों को दवा पिलाकर अमरबेलि ने छुट्टी पाई। फुलिया को अस्पताल दिखा रही थी। तब तक डाक्टर खन्ना ने कहा—

'तुम्हारे लिये एक अच्छी खबर है, अमर।'

'क्या ?'

'बीस दिन पहले कलकत्ते के एक सेठ जी सेवा-सदन देखने आये थे। याद है ?'

'सूट, बूट, हैट पहने हुए थे ?'

'वह तो उनका प्राइवेट सेक्रेटरी था। अचकन पाजामा और पगड़ी पहने हुए सेठजी थे।'

'याद है।'

'उन दिनों सारा अस्पताल घायलों से भर गया था। सेवा-सदन का सेवा-भाव देखकर सेठजी बहुत प्रसन्न हुए हैं। आज उनका पत्र आया है।'

'क्या लिखते हैं ?'

'सेवा-सदन के लिये एक [illegible]ख रुपये ख़र्च करेंगे। कई एकड़ जमीन ख़रीदी जायगी। मकान बनेगा। सर्जरी के सामान आयेंगे। एक वेतन पाने वाला डाक्टर भी रक्खा जायगा।'

'बड़ा अच्छा होगा।' कहकर अमरबेलि जाने लगी।

'यह तो सेवा-सदन के सम्बन्ध की ख़बर हुई। अब, अपने सम्बन्ध की बात सुनो।'

'वह क्या ?' जाती जाती अमरबेलि रुक गई।

'तुम्हारा सेवा-भाव देखकर, रोगियों से तुम्हारी सराहना सुन कर सेठजी बहुत प्रभावित हुए हैं।'

'यह उनकी उदारता है।'

'उनकी उदारता यहीं तक नहीं है। तुम्हें मेडिकल कालेज भेजना चाहते हैं ताकि डाक्टर हो जाओ और अच्छी तरह लोक-सेवा कर सको। सारा खर्च सेठजी देंगे।'

अमरबेलि कुछ सोचने लगी। उसके मुँह पर वह प्रसन्नता न दिखाई पड़ी, जिसकी खन्ना बाबू ने आशा की थी।

'क्या सोच रही हो? डाक्टर बनना तुम्हें पसन्द नहीं है क्या?'

'कोई ऐसी सूरत नहीं निकल सकती, जिससे अपना खर्च मैं स्वयं निकाल सकूँ और वहाँ पढ़ती भी रहूँ?'

'विचार अच्छा है, लेकिन इस प्रकार मेडिकल कालेज की पढ़ाई नहीं चल सकती। इसमें हिचकिचाहट ही क्यों? सेठजी तुम्हारे ऊपर जो रुपये खर्च करेंगे, तुम्हारे व्यक्तिगत लाभ के लिये नहीं, बल्कि लोक-हित के लिये करेंगे। जब तुम्हारा जीवन देश के लिये है तो देश का भी कर्तव्य है कि ऐसे जीवन को जितना उपयोगी बना सके बनाकर उससे पूरा लाभ उठावे। कर्तव्य ही नहीं, बल्कि अधिकार है। उस अधिकार से किसी को वंचित करना भी तुम्हारे लिये अनुचित होगा। अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये नहीं, लोकहित का ध्यान रखते हुए सेठजी की सहायता स्वीकार करनी चाहिए। तुम्हारे बाबा की हालत कैसी है?'

'उनकी कमजोरी बढ़ती ही जा रही है।'

'चंद दिनों के मेहमान हैं। जो कुछ सेवा हो सके करती रहो।' कहकर खन्ना बाबू चले गये।

घर आकर अमरबेलि ने लैम्प जलाया। फिर वह बाबा को दवा पिलाने गई। उसके साथ फुलिया भी गई। बाबा मच्छरदानी के भीतर खाट पर पड़े थे। इसलिये फुलिया उन्हें न देख सकी।

अमरबेलि ने चूल्हा जलाया। उसने दूध गर्म करके बाबा को पिलाया। फिर उसने सब्जी-रोटी तैयार कर ली। खा-पीकर माँ बेटी लेट रहीं।

'तुझे कहीं जाना होगा क्या हीरा ?'

'दिल्ली जाऊँगी।'

'कब ?'

'साल भर बाद।'

'वहाँ से आकर डाक्टर हो जायगी ?'

'हाँ।'

'मिडिल पास कर लिया क्या हीरा ?'

'पिछले साल इन्ट्रेन्स पास किया है माँ।'

'कौन-सा दर्जा ?'

'दसवाँ, अगले साल बारहवाँ दर्जा पास करके डाक्टरी पढ़ने जाऊँगी।'

'वहाँ, कितने दिन लगेंगे ?'

'चार-पाँच साल लग जायँगे।'

'चार पाँच साल बहुत होते हैं।'

'दिन बीतते देर नहीं लगती माँ।'

बातें करती-करती माँ-बेटी सो गईं ! अगले दिन फुलिया सो रही थी तभी अमरबेलि ने कमरे झाड़ डाले, चौका-बर्तन कर लिये और नहा-धोकर तैयार हो गई। फुलिया की आँखें खुलीं। उस समय अमरबेलि गीले तौलिये से बाबा के हाथ, मुँह और पैर पोंछ रही थी। आँखें मलती हुई फुलिया भी वहीं पहुँची। इस बार उसने बाबा को देख लिया। बाबा का मुँह देखते ही वह बड़े जोर से भागी। उसके इस व्योहार पर अमरबेलि को आश्चर्य हुआ। यह रहस्य उसकी समझ में न आया। वह बाबा का मुँह ताकने लगी।

'तेरी माँ थी क्या, अमर ?' बाबा ने पूछा।

'हाँ, बाबा।'

आज पहली बार अमरबेलि ने बुड्ढे की आँखों में आँसू देखा। उसे और भी आश्चर्य हुआ।

'रोते क्यों हो, बाबा ?'

'वह भाग क्यों गई ?'

'मालूम नहीं, उसे बुलाऊँ ?'

'एक बार उसे देखना चाहता हूँ। शायद उसी को देखने के लिये प्राण रुके हुए हैं।'

'मेरी माँ को देखने के लिये ?'

'हाँ, उसे जल्दी बुला, नहीं चली जायगी।'

अमरबेलि ने दौड़कर अपनी माँ को पकड़ा।

'चल जल्दी, तू भाग क्यों आई ?'

'नहीं हीरा, उनके सामने नहीं जाऊँगी।'

'क्यों ?'

'तू जानती है कि यह कौन हैं ?'

'कल बतलाया नहीं था ? कई साल तक इन्होंने कमा-कमाकर मुझे खिलाया और पढ़ाया, यही तो हैं मेरे बाबा !'

'तेरे बाबा नहीं, तेरे नाना, मेरे बाप। तू पेट में थी तभी गाँव छोड़कर चले आये।'

'मेरे नाना यही हैं !'

'मुझे देखकर उन्हें दुख होगा।'

'तुझे बुला रहे हैं। एक बार देखना चाहते हैं।'

'बुला रहे हैं तो चलूँगी।'

बाबा के पैर पर सिर रखकर फुलिया ने कहा—

'क्यों बुलाया बाबू ? इस बेहया पापिन का मुँह देखने के लिये ?'

दुक्खी ने उठकर बैठना चाहा। अमर ने सहारा देकर दुक्खी को उठाया और पीठ की ओर सहारे के लिये तकिया और रज़ाई रख दी। दुक्खी ने बेटी का सिर अपने पैर पर से उठाया। बेटी के सजल मुख पर वृद्ध ने सजल आँखें डालीं। कुछ कहने के लिये होंठ हिले, लेकिन आवाज़ न निकली। बेटी को देखते ही देखते बाबू की आँखें न जाने कैसी हो गईं। देखते ही देखते बाबा चारपाई पर गिर गये। 'बाबू, बाबू' कहती हुई फुलिया रो पड़ी। अमरवेलि ने नाड़ी देखी, खन्ना बाबू को बुलाने का समय बीत चुका ...

(१२)

इंजन का चालक

'आलोक' के लिये टिप्पणियाँ लिख रहे थे। तब तक एक विद्यार्थी ने सामने आकर नमस्कार किया। पांडे जी ने आशीर्वाद देकर कहा—

'बैठो नरेन्द्र, कैसे आये ?'

'यही कहने के लिये कि आपने स्कूल तो छोड़ ही दिया, हम लोगों को न छोड़ते।' कुर्सी पर बैठते हुए नरेन्द्र ने कहा—

'तुम लोगों को मैंने नहीं छोड़ा है, नरेन्द्र।'

'इसका हमें कैसे अनुभव हो ?'

'तुम्हीं बतलाओ, मैं कैसे अनुभव कराऊँ ?'

'बतलाऊँ ? आप मानेंगे ?'

'तुम लोगों से मुझे हार्दिक स्नेह है, नरेन्द्र।'

'हम चाहते हैं कि आपके सम्पर्क में रह कर उस स्नेह का पीते रहें।'

'तो आया करो।'

'मैं व्यक्तिगत रूप से नहीं आया हूँ।'

'तुम सामूहिक रूप से मेरा सम्पर्क चाहते हो ! यह प्रेस भी मुझे चलाना है, इसका ध्यान रखते हुए कोई उपाय बतलाओ।'

'हमारे लिये आपके हृदय में जो स्नेह है उसको यह प्रेस और भी उपयोगी बना देगा।'

'कैसे ?'

'छात्र-संघ का कर्णधार बन जाइए।'

'संघ को पथ-प्रदर्शक चाहिए?'

'आप संघ का सभापतित्व स्वीकृत कर लें।'

'संघ को एक दीपक दे सकता हूँ।'

'संघ आपका आभारी होगा।'

'मेरा नहीं, दीपक जी का आभारी बनो।'

'आप क्या कह रहे हैं गुरुदेव? साथियों से वादा करके आ रहा हूँ।'

'कैसा वादा?'

'यही कि सभापतित्व के लिये आपकी स्वीकृति मैं प्राप्त कर लूँगा। आप मेरा अनुरोध ठुकरा देंगे क्या?'

'तुम दीपक जी से अनुरोध करो और उन्हीं को संघ का कर्णधार बनाओ।'

'संघ आपको चाहता है।'

'क्योंकि संघ ने दीपक जी को नहीं देखा है।'

'वही दीपक जी जिनकी कुछ कवितायें आलोक में छपी हैं?'

'वही दीपक जी जिनकी 'प्रतिहिंसा' और 'समाज की भट्ठी' तुमने 'आलोक' में पढ़ी होगी।'

'शायद आपके शिष्य आपका प्रस्ताव मान लें, लेकिन संघ की प्रार्थना दीपक जी के सामने आप ही रख सकेंगे।'

'ऐसे नहीं, संघ का प्रस्ताव सरकारी वारंट की तरह उनके सामने रखिए और गले में हाथ डालकर उन्हें घसीट ले जाइए।'

'संघ की गाड़ी ऐसे कब तक चलेगी?'

'जब तक इंजन में गर्मी रहेगी। नहीं जानते इंजन में कैसी शक्ति होती है? एक बार उसे चालू कर दीजिए फिर देखिए।'

'उसे आप ही चालू कर सकेंगे, गुरुदेव।'

'बड़ा दुख है, नरेन्द्र, पहाड़ को हिला देने वाली शक्ति उसमें नष्ट हो रही है। मेरा कौशल काम नहीं करता।'

'ऐसा चालक हमें कहाँ मिलेगा गुरुदेव?'

इसी समय आफ़िस के सामने एक तांगा रुका। उस पर से एक देवी जी उतरीं। स्वागत के लिये उठते हुए पांडे जी ने कहा—

'चिन्ता मत करो नरेन्द्र, इंजन को गर्म करते रहो। कभी न कभी कोई चालक आ ही जायगा। फिर तो ऐसी कील ऐंठूंगा कि धकाधक चलने लगेगा। (आगन्तुक से) आइए देवी जी, नमस्कार, विराजिये।'

नरेन्द्र ने उनके आगे एक कुर्सी सरका दी। देवी जी बैठकर बोलीं—

'सम्पादक जी से कुछ कहना चाहती हूँ।'

'क्या आज्ञा है?'

'आप ही हैं। तो सुनिये। बनारस की रामलीला पर अधिकारियों ने जो प्रतिबन्ध लगाया था उसे मैंने पढ़ा। उसे हटाने के लिये 'आलोक' ने जो आन्दोलन चलाया, उसे भी पढ़ा। आन्दोलन की सफलता पर 'आलोक' को बधाई देती हूँ।'

'इस प्रोत्साहन के लिये, धन्यवाद।'

'एक बात और भी कहूँगी।'

'कहिये।'

'अब तो चौगुने जोश के साथ बाजा बजेगा ही ?'

'उसे रोक कौन सकता है ?' इस बार नरेन्द्र बोल पड़ा।

'विरोधियों ने उपद्रव किया तो ?'

'उन्हें भुट्टे की तरह भून दिया जायगा। सशस्त्र पुलिस साथ रहेगी।' नरेन्द्र ने कहा।

'एक तुच्छ प्राणी ने घर में बैठकर कुछ असन्तोष प्रगट किया था। वह केवल असन्तोष था, उसमें विरोध की आग नहीं थी। कीड़े जैसे उस तुच्छ जीव के असन्तोष को शान्त करने के लिये सती-शिरोमणि महारानी सीता को राम ने राजमहल से बाहर निकाल दिया। उसी राम के जीवन की नक़ल दिखाने के लिये विरोधियों के एक दल को भुट्टे की तरह भून दिया जायगा ? राम के भक्तों ने राम से ऐसी अनुमति माँग ली है क्या ?'

'तो क्या रामलीला बन्द कर दी जाय ?' नरेन्द्र ने पूछा।

'ऐसा तो मैंने नहीं कहा। केवल संगीनों का सहारा लेना मुझे खटकता है। इससे विरोध की आग भीतर ही भीतर धधकती रहेगी। जब देश एकता के लिये प्रयत्नशील हो रहा है ऐसे समय घर में लगी हुई आग में पानी न डालकर घी डालना कहाँ तक उचित होगा ?'

'विरोधी लोग हठ धर्मी पर डटे रहेंगे तो संगीनों का सहारा लेना ही पड़ेगा।' नरेन्द्र ने कहा।

'आप ही कोई उपाय बतलाइए, देवी जी।' पांडे जी ने कहा।

'उपाय यही है कि आप विरोधियों का सहयोग प्राप्त कर लें।'

'ऐसा होना असम्भव है।' नरेन्द्र ने कहा।

'किस प्रकार ?' पांडे जी ने पूछा।

'इस समय विरोधी अपनी पराजय समझ रहे हैं। पराजित पक्ष के हृदय में अपमान की कैसी ज्वाला धधकती रहती है इसे दूसरा नहीं समझ सकता।'

'समझ भी सकता है, लेकिन उसे बुझावें कैसे ?' पांडेजी ने पूछा।

'विजयी पक्ष पराजित पक्ष के सामने आत्मसमर्पण करके उस ज्वाला को बुझा सकता है।'

'शत्रु के सामने आत्मसमर्पण !' नरेन्द्र ने कहा।

'शत्रु के साथ एक घर में रहना ठीक नहीं, मिटा सकें तो शत्रु को एकदम मिटा दीजिए, नहीं तो घर का बँटवारा करना ही पड़ेगा, बीच में एक दीवार खींचनी ही पड़ेगी।'

'इसके सिवा और कोई युक्ति ?' पांडे जी ने कहा।

'तीसरी युक्ति पहले ही कह चुकी हूँ, वही युक्ति सर्वोत्तम और व्यवहार के योग्य है।'

'वही, शत्रु के सामने आत्मसमर्पण।' नरेन्द्र ने फिर कहा।

'एक घर में रहना है तो शत्रु के हृदय को बदल कर उसे मित्र का हृदय बनाना ही पड़ेगा। ऐसा करने के लिये आत्मसमर्पण के सिवा दूसरा उपाय नहीं हो सकता।'

'आत्मसमर्पण करते ही शत्रु ने तलवार के घाट उतार दिया तो ?' नरेन्द्र ने पूछा

'जब आपने आत्मसमर्पण कर दिया तो वह जो कुछ भी करता है करने दीजिए, नहीं तो आपका आत्मसमर्पण झूठा है।'

'आत्म-हत्या के लिये कौन तैयार होगा ?' नरेन्द्र ने कहा।

'बात को समझने का प्रयत्न करो नरेन्द्र, इसे 'बलिदान' कह सकते हैं 'आत्महत्या' नहीं। ऐसा बलिदान भी महान आत्मायें करती हैं, कायर नहीं कर सकता। इस समय हमारे सामने राम-लीला का प्रश्न है। सोचना यह है कि इस सिद्धान्त का उपयोग हम अपनी समस्या को सुलझाने में किस प्रकार कर सकते हैं।' पांडे जी ने कहा।

'आप चाहें तो विरोधियों की छाती पर मूँग दल सकते हैं, लेकिन इससे रंग में भंग पड़ने की आशंका बनी रहेगी। पिछले दंगे का भयानक दृश्य मैं देख चुकी हूँ और चाहती हूँ कि वह दृश्य फिर न देखना पड़े। ऐसी आशंका मिटाने के लिये हमें विरोधियों का सहयोग प्राप्त करना चाहिये।'

'किस प्रकार ?' पांडे जी ने पूछा।

'रामलीला के जलूस का नेतृत्व करने के लिये अन्जुमन इसला-मिया को निमन्त्रित कीजिये। कहाँ बाजा बजे, कहाँ न बजे, इसकी सारी योजना उन्हीं को बनाने दीजिये।'

'ऐसी युक्तियाँ भी तभी सफल हो सकती हैं जब देश में कूटनीति का चक्र चलाने वाला तृतीय पक्ष न हो।' कहते हुये कमरे में दीपक जी आ पहुँचे। उन्होंने देवी जी को नमस्कार किया। वह बोलीं—

'नमस्कार दीपक जी, अब तो आप एक दम अच्छे हैं ?'

'आप लोग एक दूसरे से परिचित दीखते हैं!' पांडे जी ने कहा।

'आप ने नहीं पहचाना ?' दीपक जी ने कहा।

'इसके लिये देवी जी से क्षमा चाहता हूँ।' पांडे जी ने कहा।

'आप ही तो हैं डाक्टर अमरबेलि।' दीपक जी बोले।

'आप के सम्बन्ध में जो कुछ सुना था वह प्रत्यक्ष देख लिया। आप का सुझाव बहुत सुन्दर है। अभी दीपक जी ने जो कुछ कहा है वह बिल्कुल यथार्थ है, फिर भी चाहता हूँ कि रामलीला कमिटी के सामने अपना सुझाव आप रक्खें। मैं इसका समर्थन करूँगा। कमिटी की ओर से मैं आप को निमंत्रित करता हूँ। आज ही, इसी स्थान पर रात में आठ बजे मीटिंग है। आप कष्ट उठा सकेंगी ?'

अमरबेलि ने घड़ी देखी। साढ़े छ बज रहे थे।

'डेढ़ घंटे की देर है, आने का प्रयत्न करूँगी।' कह कर अमरबेलि उठने लगीं।

'आप से एक शिकायत है, देवी जी।' दीपक जी बोल उठे।

'आप से एक प्रार्थना है, दीपक जी।' नरेन्द्र बोल पड़ा। दीपक जी ने नरेन्द्र की ओर देखा। अमरबेलि ने कहा—

'शिकायत का जवाब फिर दे दूँगी, पहले इनकी प्रार्थना सुन लीजिये।'

'बिना सवाल सुने ही जवाब दे देंगी ?'

'सवाल तो शायद जानती हूँ, फिर भी आप कह डालिये।'

'ऊपर चलिये। थोड़ा जल-पान मँगा लीजिये पांडे जी। पांडे जी ने एक कर्मचारी को रुपया देकर बाहर भेजा।

'पहले इन को उत्तर तो दे दीजिये।' नरेन्द्र की ओर संकेत

करके अमरबेलि ने कहा। दीपक जी ने फिर नरेन्द्र की ओर देखा। नरेन्द्र ने कहा—

'हमारे छात्र-संघ का प्रधानत्व आप स्वीकार करलें।'

'छात्रों ने भी संघ बनाया! बेचारे मास्टरों को जीने भी न देंगे?' दीपक जी ने कहा।

'इससे मास्टरों पर कौन सी आफ़त आ जायगी?'

'आप ही पर कौन सी आफ़त आ रही थी, जो संघ बनाने लगे?'

'संघे शक्तिः कलौयुगे' नरेन्द्र ने कहा—

'ऐसा क्यों? अन्य युगों का बहिष्कार क्यों? यों कहिए— 'संघे शक्तिः युगे-युगे।' दीपक जी ने कहा।

'बस हम भी संघ बनाकर शक्तिशाली बनना चाहते हैं।'

'मास्टरों से मोर्चा लेने के लिये?'

'संघ ऐसा क्यों करेगा?'

'सिवा इसके और क्या करेगा? मास्टर ने किसी कामचोर लड़के का कान खींच दिया, लड़के ने बग़ावत कर दी। मास्टर को ही नहीं, सारे स्कूल को नीचा दिखाने के लिये उसने गुट बना ली। उसी गुट का नाम रख लिया 'छात्र-संघ'।'

'सभी विद्यार्थी ऐसे नहीं होते दीपक जी, हमारे संघ में ऐसा एकाध ही होगा।'

'उसे एक नहीं समझना चाहिए। हर प्रकार की हुल्लड़ बाज़ी में आगे रहने वाला वही एक सारे गिरोह का नेता बन जाता है। शिवा जी को नेतृत्व मिला सिंहगढ़ तोड़ने से, आपके शिवाजी को

नेतागिरी मिलती है स्कूल का अनुशासन तोड़ने से । वह सूरमा ऐसी नेतागिरी को विक्टोरिया क्रौस समझता है। उस गौरव को प्राप्त करने के लिये शासन-भंग, शिक्षकों से अकड़ना और अध्ययन का बहिष्कार, वह सभी प्रकार की बहादुरी दिखाएगा। ऐसे ही हुल्लड़बाजों की सहायता के लिये यह संघ बनाया गया।'

'संघ का ऐसा उद्देश्य तो नहीं है।'

'संघ के दो ही उद्देश्य हो सकते हैं—रक्षा या उत्पीड़न। श्रमजीवियों ने संघ बनाया अपनी रक्षा के लिये, मालिकों से लोहा लेने के लिये। आप ने संघ बनाया श्रमजीवियों को सताने के लिये।'

'श्रमजीवियों को मिल मालिक ही सता सकते हैं, हमारा उनसे क्या सम्बन्ध ?'

'इतना भी नहीं समझते ? बेचारे मास्टर श्रमजीवी नहीं तो क्या हैं ? मिल का मजदूर हाथ पैर हिलाता है, वह शारीरिक श्रमजीवी है। स्कूल का मास्टर सिर खपाता है, वह बौद्धिक श्रमजीवी है।'

'गुरुओं की तुलना कुली मजदूरों से करना अन्याय है दीपकजी।'

'सचमुच अन्याय होगा। कुली मजदूर तो अकड़ भी सकते हैं, हड़ताल कर सकते हैं, मालिकों के दांत खट्टे कर सकते हैं। बेचारा मास्टर संसार का सबसे निर्बल, सबसे सीधा जीव है। वह किसी का क्या बिगाड़ सकता है ?'

'बहुत कुछ बिगाड़ सकता है, दीपक जी, देश का भविष्य मास्टरों के ही हाथ में रहता है।' इस बार अमरबेलि ने कहा।

'और मास्टरों का भविष्य किसके हाथ में रहता है, डाक्टर ?' पांडे जी पूछ बैठे।

सभी चुप रह गये। दीपक जी ने फिर कहा—

'जो भूल भीष्म ने की, उसका सुधार अब तक न हो सका। होना तो यह चाहिये था कि पितामह भीष्म अपने एक सौ पाँच पोतों को द्रोण जी के आश्रम में भेजते। वहीं वे विद्याएँ सीखते और सुबह शाम चूल्हा फूँकने के लिये जंगल से लकड़ी और झरने से पानी भी लाते। कभी अकड़ दिखाने पर द्रोण जी दुर्योधन के मुँह पर दो चाँटे भी जड़ सकते। लेकिन ऐसा न हुआ। दुर्योधन का भविष्य द्रोण के हाथ में और द्रोण का भविष्य दुर्योधन के हाथ में चला गया। गुरु के ऊँचे आसन से उतार कर द्रोण जी नौकर रख लिये गये। राष्ट्र के कर्णधारों का निर्माण उन्हीं कर्णधारों के नौकर के हाथ में दे दिया गया। नतीजा वही हुआ जो होना चाहिए, गुरु का, चेलों का, सारे राष्ट्र का नाश।'

'लेकिन पांडवों का नाश नहीं हुआ दीपक जी, वे भी द्रोण के चेले थे।'

'वे ही द्रोण के चेले थे, इसलिये उनका नाश नहीं हुआ। उनकी विजय हुई। सच्चे गुरु ने सच्चे चेलों को मरते दम तक सच्ची सीख दी। साथ ही सच्चे नौकर ने अन्धे मालिक के लिये प्राणों की बलि, प्राणों से प्यारे बेटे की भी बलि चढ़ा दी, लेकिन फल उलटा हुआ। आज का मास्टर भी गुरु नहीं, नौकर है। नौकर

ऐसा नहीं जैसे कलेक्टर साहब का अर्दली, जो बहुतों पर धौंस
गा ले, रुपये रोज़ का सिगरेट फूँक डाले। इस नौकर को रोटी
टुकड़ों के लिये दर दर दौड़ना पड़ता है और आप कहती हैं कि
ी के हाथ देश का भविष्य है।'

'देश का भविष्य अपने हाथ में लीजिए दीपक जी, विद्यार्थियों
' रास्ता दिखाइये।'

'पकड़िये पांडे जी को, इनसे अच्छा पथ-प्रदर्शक कहाँ मिलेगा ?'

फल, मिठाई और नमकीन लेकर कर्मचारी लौटा। अमरबेलि
। साथ लेकर दीपक जी ऊपर जाने लगे।

'इन्हें तो पकड़े ही हूँ, लेकिन आपको भी नहीं छोड़ूँगा।'
ेन्द्र ने कहा।

दीपक जी के जाने के बाद नरेन्द्र ने फिर कहा—

'दीपक जी विचारशील तो दीखते हैं, लेकिन कुछ काम भी
र सकेंगे ?'

'ऐसा सन्देह क्यों ?' पांडे जी ने पूछा।

'जब तक यहाँ थे, तब तक शराब की गंध आ रही थी।'

'उनके प्राइवेट जीवन की ओर ध्यान मत दो। किसी प्रकार
न्हें एक बार घसीट ले जाओ।'

'यह तो आपही कर सकते हैं, गुरुदेव।'

'मैं नहीं, डाक्टर अमरबेलि कर सकेंगी।'

'कहूँ उनसे ?'

'यहाँ नहीं, उन्हीं के घर जाकर।'

नरेन्द्र ने नमस्कार किया और चला गया। ऊपर जाकर दीपक

जी ने अमरबेलि को सोफे पर बैठाया। उसके सामने की तिपाई पर तश्तरियों में जलपान रखकर प्रेस का कर्मचारी नीचे चला गया।

'इस तकल्लुफ़ की क्या ज़रूरत थी? आप अपनी शिकायत सुनाइये।'

'तकल्लुफ़ नहीं, सभ्यता के आदि-काल से अतिथि-पूजा के लिये यह देश विश्वविख्यात रहा है। साथ ही मेरे ऊपर आपका उपकार है। मैं घायल हुआ था......।'

'मैंने केवल अपना कर्तव्य किया था।'

'मैं भी केवल अपना कर्तव्य कर रहा हूँ। कृतज्ञता और अतिथि-पूजा हर प्राणी का कर्तव्य है। हृदय की प्रेरणा से एक छोटी-सी भेंट मैंने भेजी थी। उसे आपने ठुकरा दिया। अब इस जलपान को ग्रहण करने में भी आपको आपत्ति है?'

'आपका ऐसा ही आग्रह है तो किये लेती हूँ, आप भी लीजिये।'

जलपान आरम्भ हुआ।

'क्या हर रोगी का उपहार आप इसी तरह लौटा देती हैं?'

'आपका उपहार बहुत भारी था। मेरी गर्दन उस हार का भार न सँभाल सकती।' कहकर अमरबेलि मुस्कुराईं।

'आपकी गर्दन इतनी नाज़ुक है!'

ये शब्द दीपक जी के मुँह से निकल गये। अमरबेलि का मुख-मंडल आरक्त हो उठा। उसने आँखें झुका लीं। पहली बार घर में आये हुये अतिथि के किसी अंग की आलोचना करने का दीपक जी को अधिकार न था। इसका अनुभव दीपक जी ने भी किया। अतः आगे कुछ भी न बोल सके।

जलपान समाप्त कर अमरबेलि नीचे आईं। रामलीला-कमिटी के दो सदस्य आ चुके थे। अमरबेलि का सुझाव पांडे जी उनके सामने रख रहे थे। उन्होंने जो कुछ तर्क किये सबके उत्तर दिये गये। इतनी देर में दूसरे कई सदस्य भी आ गये। कोरम पूरा हो गया। कार्य आरम्भ हुआ। डाक्टर अमरबेलि का सुझाव प्रस्ताव के रूप में सब के सामने आया। कुछ वाद विवाद के बाद वह सर्व-सम्मति से पास हुआ। मीटिंग समाप्त हुई।

अमरबेलि के लिये ताँगा मँगाया गया। किन्तु रात का समय था। दस बज चुके थे। पांडे जी ने पूछा—

'किसी को आपके साथ कर दूँ क्या ?'

'कोई आवश्यकता नहीं।' अमरबेलि ने कहा।

'आवश्यकता तो नहीं है, लेकिन आपत्ति भी न हो तो आप के द्वार तक चल सकता हूँ।' दीपक जी ने कहा।

'चलिये।'

पीछे अमरबेलि बैठीं। आगे दीपक जी बैठ गये। ताँगा अमर-बेलि के द्वार पर रुका।

'अब तो भोजन करके ही जाइये।' ताँगे से उतर कर अमर-बेलि ने कहा।

'धन्यवाद, फिर कभी कर लूँगा।' कहकर दीपक जी ने ताँगे वाले को वापस चलने का आदेश दिया।

'अतिथि पूजा की जिस परिपाटी की दुहाई स्वयं दे रहे थे उसे इतनी जल्दी भूल गये क्या ?'

'अतिथि पूजा की परिपाटी को आप सचमुच मानती हैं तो

मुझे आपका निमंत्रण स्वीकार है।' कहकर दीपक जी ताँगे से उतर पड़े और अमरबेलि के पीछे-पीछे घर में चले गये।

—:o:—

(१३)

भर दे इस पत्थर में पानी
पथिक सुनादे करुण कहानी

'खाकी वर्दी पहने घोड़े पर सवार सबसे आगे अंजुमन इसलामिया के सिक्रेटरी थे। सीटी बजाकर जब हरी रोशनी दिखाते तो जलूस आगे बढ़ता और लाल रोशनी दिखाते ही सारा जलूस रुक जाता। पुलिस का कहीं एक भी आदमी नहीं दीखता था। अंजुमन और रामलीला कमेटी के चुने चुनाये सदस्य बड़ी सावधानी से जलूस और दर्शकों का निरीक्षण कर रहे थे। सबसे पीछे अन्जुमन के सदर हाजी पीर मुहम्मद, छोटे मियाँ, रहीम, अमरबेलि, करुणेश पाँडे और दीपक जी थे। जोश के साथ बाजा बजाते हुये जलूस बढ़ रहा था। एक जगह यकायक बाजा बन्द हो गया।

'माजरा क्या है, देखो तो छोटे मियाँ।' हाजी मियाँ ने कहा।

'मस्जिद आ गई होगी।' पांडे जी बोले।

'यहाँ मस्जिद तो जरूर है, लेकिन नुमाज का वक्त नहीं है। जलूस का प्रोग्राम ही इस ढंग का बनाया गया है कि कहीं बाजा बन्द करने की जरूरत न पड़े। लोगों को जहाँ जहाँ रख दिया गया था वे अपनी अपनी जगह मौजूद हैं, रहीम मियाँ?' हाजी मियाँ ने फिर कहा।

'जहाँ जहाँ किसी किस्म का अंदेशा था वहाँ वहाँ आदमी मुस्तैद हैं। खुद देखकर कर आ रहा हूँ। आप फिकर न कीजिए।' रहीम मियाँ ने कहा।

'फिर वाजा क्यों बन्द हो गया ? हाजी मियाँ ने पूछा।

इसी समय फिर वाजा वजने लगा। छोटे मियाँ आते दिखाई पड़े।

'माजरा क्या था ?'

'वाजे वालों की ग़लत फ़हमी थी। उन्हें समझा दिया गया।' छोटे मियाँ ने कहा।

'पान, इलायची का इन्तजाम ठीक है ?'

'इतमीनान रखिए, सब कुछ देखकर आ रहा हूँ।'

जलूस को आधे रास्ते तक पहुँचा कर अमरवेलि ने हाजी मियाँ और पांडेजी से विदा मांगी। हाजी मियाँ ने कहा—'आप तो हम लोगों को बिल्कुल भूल गईं। कभी घर पर आइए।'

'आऊँगी।' कहकर अमरवेलि चल पड़ीं। दीपक जी भी उनके साथ लौट पड़े।

थोड़ी दूर पर चौराहा था। मोड़ पर इक्के की झनझनाहट सुनाई पड़ी।

'ख़ाली हो तो रोक लूँ। कहकर अमरवेलि तेजी से आगे बढ़ीं। पैर में ठोकर लगी। पैर पकड़ कर बैठ गईं और म्युनिसिपैलिटी को कोसने लगीं।

'अन्धेरे में भागने से ऐसा ही होता है। उठिए, अब से दीपक के साथ चलिये।' उन्हें उठाते हुए दीपकजी ने कहा।

'दीपक कहाँ तक चलेगा ?'

'कहाँ तक जलेगा ! दीपक वहीं तक जलता है जहाँ तक उसमें स्नेह पड़ता रहता है।'

'तब तो बड़ा महँगा है। सारा स्नेह चाट लेगा।'

'लेकिन ठोकर खाने से बचायेगा।'

'कैसी मीठी सुगन्ध आई दीपक जी।'

''वह देखिए बाग़ आ गया। सूनी रात में रात की रानी सौरभ लुटा रही है। लेकिन अभागे प्राणी को इतना अवकाश कहाँ।'

'रात तो काफ़ी जा चुकी है, फिर भी दस मिनट बैठूँगी।'

बाग़ में बेंच पर बैठकर अमरबेलि ने कहा—

'मेरे पास अनेकों दीन दुखी रोगी और पीड़ित आते रहेंगे। अपना सारा स्नेह दीपक में डाल दूँ तो उन्हें क्या दूँगी, दीपक जी ?'

'क्या दीपक उन लोगों की श्रेणी में नहीं आता ?'

'जहाँ तक आया है वहाँ तक पा चुका है। आगे भी आवश्यकतानुसार पाता रहेगा ?'

'इससे अधिक कौन चाहता है ?'

'आप चाहते हैं। मुझे अपनी बनाना चाहते हैं। मैं किसी की अखंड सम्पत्ति नहीं बन सकती। इसीलिये आपका हार मैंने लौटा दिया। यह है आपकी शिकायत का जवाब। जब आपने वह हार भेजा था तभी उसका रहस्य भी आपको खोल देना चाहिए था।'

'कैसा रहस्य ?'

'जानते हुये भी मुझसे पूछ रहे हैं ? यह सोचकर कि डाक्टर अमरबेलि उस रहस्य को नहीं जानतीं !'

'मेरे और सुलोचना के सिवा उस रहस्य को कोई नहीं जानता था।'

'यही सोचकर एक उड़ती हुई चिड़िया को सोने की जंजीर में बाँधने चले थे ?'

'सुलोचना आपको कहाँ मिल गई ?'

'बिल्कुल यही बात मैं आपसे पूछना चाहती हूँ।'

'मैं भी बतला दूँगा, लेकिन वह किस्सा लम्बा है।'

'उस लम्बे क़िस्से को सुनना चाहती हूँ। वह मुझे मेडिकल कालेज के अस्पताल में मिली थी।'

'बीमार थी ?'

'बीमार नहीं, घायल होकर आई थी। दाहिने हाथ-पैर की हड्डियां और दो पसलियां टूट गई थीं।'

'कैसे ?'

'उसका पति बाप दादों की कमाई फूँक चुका था। सुलोचना के सारे ज़ेवर भी बेच चुका था। फिर भी उसे शराब के लिये पैसों की जरूरत पड़ती थी। बेचारी कहाँ तक बाप और भाई से पैसे माँग कर लाती ! उसकी बेबसी पर वह झुँझला पड़ा। उसे तिमंजिले पर से उसने धक्का दे दिया। बहुत दिनों तक अस्पताल में पड़ी थी। मुझे उससे सहानुभूति थी, इसीलिये उसकी माँ मुझ पर स्नेह रखने लगी। जब वह घर चली गई तो उसकी मां ने एक दिन मुझे निमंत्रित किया। उसी दिन मेरे पास आपका हार पहुँचा था। हार पहनकर उसके घर गई। पहले उसकी मां सामने आई। मैंने हाल पूछा। उसने कहा—

'पूछती क्या हो, बेटी, चलकर देख लो। यह जलन तो ज़िन्दगी भर के लिये हो गई, मर ही जाती तो अच्छा था।'

'ऐसे शराबी को उसे ब्याहा क्यों?' मैंने पूछा।

'क्योंकि शराबी बड़े आदमी का बेटा था। बाप के पास लाखों की हैसियत थी।' उसकी मां ने कहा।

'आप लोग हैसियत को ही महत्व देती हैं?' मैंने कहा।

'मैं नहीं, सुलोचना का बाप देता है। सुलोचना के लिये घर पर ही ऐसा अच्छा वर आ गया था कि क्या कहूँ! लेकिन बेटी के बाप को वह वर पसन्द न आया।' उसकी मां बोली।

तकिए के सहारे पलंग पर सुलोचना पड़ी थी। मैं उसके पास बैठ गई। उसकी ठुड्डी पकड़ कर मैंने पूछा—

'अच्छी हो, सुलोचना?'

'बिल्कुल, अब मैं घर जाने वाली हूँ। मुझे भूल जाओगी क्या? कभी कलकत्ता आना।' सुलोचना ने कहा।

'आऊँगी।' मैंने कहा।

बड़े ध्यान से वह मेरे हार को देखने लगी। हार उतार कर मैंने उसके गले में डाल दिया। उसकी आखें भर आईं। उसने कहा—

'ऐसा न कीजिये। इसे उतार लीजिए। देने वाले ने यह हार आपको इसलिये नहीं दिया है कि जिसे चाहें उसे पहना दें। उसे आप क्या जवाब देंगी?'

'आपने कैसे जान लिया कि यह हार किसी ने दिया है?' मैं बोली।

'किसी ने नहीं, आपके देवता जी ने दिया है।' सुलोचना ने कहा।

'मैं कुमारी हूँ सुलोचना देवी। यह हार मुझे एक रोगी से मिला है।' मैंने कहा।

'तो वह प्रेम का रोगी है। वह हार पहनाकर आपको अपनी बनाना चाहता है। आप धन्य हैं।' सुलोचना ने कहा।

'इससे आगे मैंने कुछ न पूछा। दूसरे ही दिन मैंने आपका हार लौटा दिया। अब वह लम्बा किस्सा कह डालिये।'

दीपक जी कहने लगे—

'दीपचंद उसके यहाँ ट्यूटर था। उसके भाई के बच्चों को पढ़ाता था। माँ और दोनों भतीजों के साथ वह रोज झील की तरफ हवा खाने जाती थी। उसका ड्राइवर एक सप्ताह की छुट्टी लेकर घर चला गया। उतने दिनों के लिये उसका काम दीपचंद को करना पड़ा। एक दिन वह चिड़ियाघर देखने गई। कार से उतर कर माँ और भतीजों के साथ वह फाटक में घुसी। किसी ने केला खाकर रास्ते में छिलका डाल दिया था। उसी पर उसका पैर पड़ गया। पैर फिसल गया। वह गिर पड़ी। पैर में मोच आ गई। उसकी माँ उसी दम सबको वापिस लाने के लिये तैयार हुई। दोनों बच्चे उदास होने लगे। उनका मुँह देख कर सुलोचना ने कहा—'तुम इन दोनों को घुमा लाओ माँ, तब तक मैं कार में बैठी रहूँगी।'

'उसकी माँ दोनों पोतों को साथ लेकर आगे चली गई। वह लौट कर कार में बैठ गई। बार बार अपना पैर मल रही थी। 'अभी आता हूँ।' कह कर दीपचंद उठा और एक दुकान से कटोरी में तेल और रद्दी कागज ले आया। उसने कागज़ जला कर तेल

को गर्म किया। वह मोच उतारने चला। पैर छूते ही—'नहीं, नहीं, आप रहने दीजिये' कह कर उसने पैर सिकोड़ लिया। दीपचंद ने कहा—'ज़रा शान्त रहिये। अभी आप का पैर गर्म है। मोच जल्दी उतर जायगी।' इसके साथ ही दीपचंद ने उसका सैंडिल और मोजा उतार दिया।'

'तेल मुझे दीजिए। अपने आप मल लूँगी।' उसने कहा।

'अपने हाथ यह काम नहीं होता। मोच तो कोई दूसरा ही उतार सकता है। यह काम आपको दूसरे के हाथ से ही कराना होगा।' कह कर दीपचंद ने तेल मलना शुरू कर दिया।'

सुलोचना को झेंप मालूम हुई। उसका चेहरा लाल हो गया। उसने आँखें नीची करलीं। उसका भाव समझ कर दीपचंद ने कहा—

'इसमें संकोच किस बात का! कल मुझे ऐसी ही कोई तकलीफ़ हो जाय तो क्या आप दूर से तमाशा देखती रहेंगी?'

वह पन्द्रह मिनिट तक मोच उतारने के लिये पैर मलता रहा। फिर उसने पूछा—

'कुछ दर्द कम हुआ?'

'हाँ, अब बस कीजिये।'

'दो बूँद और है, इसे भी मल दूँ।'

उसने सारा तेल सुखा दिया। फिर उसने अपनी रूमाल निकाली। उसके पैर पर लपेट कर ऊपर से मोजा पहना दिया। सैंडिल बाँधने चला तो सुलोचना ने उसके हाथ से सैंडिल ले लिया। वह बोली—'इसे तो अपने आप पहन सकती हूँ।'

'दो चार क़दम चलने की कोशिश कीजिये।' कह कर दीपचंद कटोरी लौटाने चला गया। वापस आया तो देखा वह सचमुच ज़रा लँगड़ाती हुई टहल रही थी। वह अपनी सीट पर बैठ गया। सुलोचना भी आकर कार में बैठ गई।

'अभी मोच दूर नहीं हुई?' दीपचंद ने पूछा।

'पहले से बहुत कम है। सचमुच आप बड़े दयालु हैं। आप में केवल एक ही कमी है।'

'वह कमी भी बतला दीजिए। उसे जानकर शायद उसे पूरी कर सकूँ। आपके मुँह से अपना दोष सुनकर मुझे प्रसन्नता होगी।' दीपचंद ने कहा।

'आप में कोई दोष नहीं है। आप विद्वान हैं, शीलवान हैं, सहृदय हैं, सुडौल हैं, सुन्दर हैं। आप में केवल एक कमी है। बनिये का बेटा होकर आपने उस कमी को पूरा नहीं किया।'

'आप का मतलब शायद धन की कमी से है। लेकिन इस कमी को मैंने कभी महत्व नहीं दिया।'

'आप न दें, लेकिन आपकी बिरादरी वाले देते हैं। बिना धन के आप के सारे गुण ऐसे हैं जैसे फूल में सुन्दरता, सुगंध और कोमलता। इन गुणों की सराहना सभी करेंगे लेकिन फूलों का हार अधिक से अधिक चार आने में बिकेगा। सोने में सुगंध आ जाय तो कहना ही क्या, लेकिन सुगंधि न होते हुए भी सोना सोना ही है। फूलों का हार सोने के हार का मूल्य नहीं पा सकता।'

'आप सच कहती हैं, सुलोचना देवी।'

'मैं सच कहती हूँ तो क्यों नहीं जाकर धन कमाते? यहाँ पड़े

पड़े अपना जीवन क्यों नष्ट कर रहे हैं? आपको धन कमा कर आदमी बनना चाहिए।'

'अच्छी बात है, चला जाऊँगा।'

'कब?'

'सेठ रूपकिशोर जी से एक बार पूछ लूँ।'

'घर के मालिक मेरे पिता जी हैं। रूप भैया से आप क्या पूछिएगा? पिता जी की आज्ञा के बिना रूप भैया आपको कुछ भी नहीं दे सकते।'

'फिर भी आपके रूप भैया मुझे लाये हैं। मुझ पर उनकी दया रही है।'

'उस दया से आप को क्या लाभ हुआ?'

'उन्होंने मुझे नौकरी दी है।'

'आप बड़े सीधे हैं। आपकी समझ पर मुझे तरस आती है।'

'ऐसा आप क्यों कह रही हैं?'

'बच्चों को पढ़ाने के लिये क्या कलकत्ता में मास्टर नहीं मिल सकते थे? रूप भैया आपको लखनऊ से लाये, केवल नौकरी देने के लिये?'

'और क्या देते, सुलोचना देवी?'

'यह भी मैं ही बतलाऊँ? आपके सामने केवल नौकरी ही है और कुछ नहीं?'

'और......और आप!'

'बस, आगे न बढ़िए। मेरे रूप भैया कितने उदार हैं, उसे अब आपने समझा। लेकिन रूप भैया जो कुछ आप को देना चाहते

थे उसे आप नहीं पा सकते। आप हमारी बिरादरी के हैं तो क्या हुआ, आप हमारी बराबरी के नहीं हैं। हमारे आप के बीच में एक गहरी खाई है। उस खाई को सोने से पाट सकें तभी हम आप को अपना सजातीय मानेंगे।'

'आप का विचार ठीक है।'

'नहीं, यह मेरा विचार नहीं है। यह मेरे पिता जी का विचार है। उनकी आँखों में आप के रूप, गुण, शील और आपकी विद्वत्ता का रत्ती भर भी महत्व नहीं, जब तक आप निर्धन हैं।'

'तो आप क्या चाहती हैं सुलोचना देवी?'

'मैं वही चाहूँगी' जो मेरे पिता जी चाहेंगे। उन्हीं का चाहना सबसे ऊपर है। उनकी इच्छा के बाहर हम भैया एक कदम भी नहीं उठा सकते।'

'इन बातों को मैं जानता भी नहीं था सुलोचना देवी।'

'आपका जीवन नष्ट हो रहा था। मुझे दया आई। मैंने बतला दिया। मेरी बातों से आपको ठेस पहुँची हो तो क्षमा चाहती हूँ।'

'आप की दया का मैं ऋणी हूँ। आप सचमुच देवी हैं।'

'बस कीजिये, आपकी बातों में आकर्षण, आपके व्यवहार में जादू, आपके स्पर्श में बिजली है। जल्द से जल्द आप हट जाइये, नहीं तो मेरे भाई के साथ आप विश्वासघात कर बैठेंगे।'

'मुझ पर विश्वास रखने वाला मुझसे धोखा नहीं खा सकता, सुलोचना देवी।'

'मैं जानती हूँ लेकिन मन बड़ा चंचल होता है, कभी कभी हृदय बड़ा दुर्बल हो जाता है। इनका विश्वास नहीं किया जा सकता।'

'आप विश्वास मानिए, मेरा आपका साक्षात् अब नहीं होगा।'

'कबसे ?'

'कल आपका ड्राइवर आजायगा, इसलिए परसों सायंकाल से।'

'तो परसों दोपहर में आपका बिस्तर मैं बाँध दूँ ?'

'आप क्यों कष्ट करेंगी ?'

'चाहती हूँ कि आप को एक दिन की भी देर न हो।'

'इससे आपको सन्तोष होता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'

'तो आप वादा करते हैं कि मेरे हाथ का बँधा हुआ बिस्तर और पुस्तकों का सन्दूक़ मेरे घर में नहीं खुलेगा ?'

'वादा करता हूँ।'

दीपचंद ने दूसरे दिन ही रूपकिशोर जी से घर जाने की अनुमति प्राप्त कर ली। तीसरे दिन वह इष्ट-मित्रों से मिलने चला गया। सायंकाल लौटा तो बिस्तर बँधा हुआ मिला। पुस्तकें एक ट्रंक में बंद थीं। दूसरे ट्रंक में कपड़े रखकर वह स्टेशन पहुँचा। अगले दिन घर पहुँच गया।

'आओ मेरे लाल, कहकर कराहती हुई माँ उठने लगी। उसका सारा शरीर गल गया था। एक एक हड्डी दीख रही थी।

'पड़ी रहो माँ, तुम्हारी ऐसी हालत कब से हो गई ? तुमने खबर क्यों नहीं भेजी ?' दीपचंद ने पूछा।

'चिट्ठी लिखा कर क्या करती बेटा ? यही तो होता कि तुम नौकरी छोड़ कर चले आते ? घर आकर क्या करते ?' कहकर माँ चूल्हे की तरफ़ चली।

'रहने दो माँ, मैं चूल्हा जला लूँगा।'

माँ की आँखें सजल हो उठीं।

'रोती क्यों हो माँ ?'

'अपनी भूल पर बेटा, तुम्हें स्कूल न भेज कर तुमसे मिहनत मजदूरी कराती, आप भी करती, तो चार पैसे जुट गये होते। घर में बहू आगई होती। समय पर दो रोटी सेंक कर देती।'

'तुमने कोई भूल नहीं की माँ, मिहनत मजदूरी करने वाले कोल्हू के बैल की तरह अपनी ज़िन्दगी काट लेते हैं। मुझे उस ज़िन्दगी से तुमने बचा लिया। अब मैं धन कमाऊँगा और आदमी बनूँगा। तुम जियो और देखो।'

मकान का मालिक किराये के लिये और बनिये आटे दाल के पैसों के लिये दीपचंद की राह देख रहे थे। उसने बिस्तर भी न खोला था कि वे आ धमके। उसने उनका हिसाब चुका दिया। कलकत्ते की कमाई खतम हो गई। लेकिन अब भी कुछ लोगों को पैसे देने थे। माँ की हालत देखते हुए वह कहीं दूर नहीं जा सकता था। रात में माँ को ज्वर चढ़ा। सारी रात वह कराहती रही। अगले दिन उसने डाक्टर को बुलाया। हालत देख कर उसने दवा लिख दी। फ़ीस देने की बारी आई। दीपचंद ने उसका पैर पकड़ लिया और अपनी परिस्थिति उसे बतला दी। वह चुपचाप चला गया। अब दवा और दूध लाना था। किसी पड़ोसी से उधार माँगते शर्म मालूम होती थी। घर के थाली लोटे रेहन हो चुके थे। वह बाहर निकला। कुछ न सूझा कि क्या करे। केमिस्ट की दूकान के सामने वह चक्कर काट रहा था। सामने

पान की दूकान थी। सोने की अंगूठी पहने एक सज्जन पान खा रहे थे। पान खाकर वह इक्के पर बैठे। दीपचंद भी उसी इक्के पर बैठ गया। बटुआ हाथ आते ही उसने इक्का रुकवाया। इक्के वाले को अठन्नी पकड़ा कर वह तेज़ी के साथ आगे बढ़ा। वह सज्जन चिल्ला पड़े—बटुआ ले गया।

दीपचंद गली में घुस गया। इक्केवान ने उसका पीछा किया। उससे बचने के लिये दीपचंद ने उसे दे पटका और उसकी टाँग को घायल कर दिया। तब तक लाल पगड़ी दिखाई पड़ी। वह भागने लगा। दाएँ बाएँ कई गलियों में घुसता हुआ वह फिर सड़क पर पहुँचा। एक मोटर साइकिल खड़ी थी। उधर लाल पगड़ी भी पीछे पीछे दौड़ लगा रही थी। वह मोटर साइकिल पर बैठ कर भागा। दस पन्द्रह मिनिट बाद उसने साइकिल को सड़क पर छोड़ दिया। एक गली में घुस गया। नीम के पेड़ के नीचे मंदिर और कुआँ दिखाई पड़ा। उसका हृदय धक धक कर रहा था। उस मंदिर में जाकर वह बैठ गया। हृदय की धड़कन बंद होने पर वह और भी दूर चला गया।

सूर्य डूबा। अन्धेरा हुआ। अनार, संतरे, दूध और दवा लेकर वह घर पहुँचा। 'माँ' कहते हुए उसने एक पैर घर के भीतर रक्खा। तब तक पीछे से किसी ने उसे पकड़ लिया। न जाने कब पुलिस वाले ने उसे पहचान लिया और सादे कपड़े पहने उसके पीछे पीछे तीन यमदूत और आ गये। भीतर से कराहती हुई माँ पुकार रही थी—'आओ मेरे लाल, दिन भर कहाँ थे?' इधर सादे कपड़े पहने पुलिस के चार आदमी उसे घसीट रहे थे।

उसने उनसे कहा—'अब मैं भागूँगा नहीं, लेकिन मेरी माँ दर्द से कराह रही है। उस पर रहम कीजिए। उसके लिये यह दवा तो घर में डाल दूँ, फिर आपके साथ चुपचाप चल दूँगा। मुझे नहीं छोड़ते तो इतना मौक़ा दीजिए कि ये शीशियाँ किसी को पकड़ा दूँ। आप ही इन्हें घर में डाल दीजिए। इन्सानियत के नाते इतना तो कर दीजिए।'

उधर आवाज़ आ रही थी—

'आओ मेरे लाल, आते क्यों नहीं ? बड़ा अन्धेरा है, दिया जलाओ, आओ।'

इधर यमदूतों में से एक ने उसके हाथ का सारा सामान लेकर कहा—'इन्हें इधर दे, ये शीशियाँ सुबूत में पेश होंगी। चुपचाप चल। इन्सानियत का सबक हवालात में सिखाया जायगा !'

बेचारा दीपचंद हवालात में ठूँस दिया गया। माँ की क्या हालत हुई—इसी सोच में उसे नींद न आई। अगले दिन वह मैजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। जो जो बातें उससे पूछी गईं उसने सच सच कह दीं। जो कुछ उसने किया था उसके लिये उसने दुख और बेबसी भी प्रगट की। इसी समय उसके दो पड़ोसी अदालत में जा पहुँचे। वे मैजिस्ट्रेट की आँखों की प्रतीक्षा करने लगे। एक बार मैजिस्ट्रेट की आँखें उन पर पड़ ही गईं। उन्होंने झट हाथ जोड़कर कहा—'हजूर !'

हजूर ने कुछ कहने के लिये आँखों से अनुमति दी। पड़ोसियों में से एक ने कहा—

'मुलज़िम की माँ मरी पड़ी है हज़ूर, कोई आग देने वाला नहीं है।'

'तुम लोग आग दे सकते हो। मुलज़िम पर पहले ही बहुत काफ़ी रियायत कर चुका हूँ। सिर्फ तीन महीने की सजा दी है।'

कहकर मैजिस्ट्रेट लंच के लिये उठ गया। दीपचंद जेल में पहुँचाया गया।

वह जेल उसके लिये पाठशाला बन गई। वहाँ कई अनुभवी गुरुओं से सम्पर्क हुआ। जीवन से, कानून से, सभ्यता से और समाज से उसे घृणा हो चुकी थी। प्रतिहिन्सा की आग जल रही थी। इन परिस्थितियों ने उसकी मनोवृत्ति को गुरुओं का उपदेश ग्रहण करने के योग्य बना दिया।

अपनी खुशी न आये, न अपनी खुशी चले। बिना किसी सूचना के एक दिन उसे फाटक के बाहर निकाल दिया गया। उससे कहा गया—'घर जाओ'।

दिन भर फाटक के पास पेड़ के नीचे वह पड़ा रहा। सन्ध्या के अन्धकार में मुँह छिपा कर वह घर पहुँचा। किसी ने चाभी लाकर दी। उसी ने बत्ती भी जलादी। जेल काट चुका था किस को मुँह दिखाता! भीतर से किवाड़ बंद करके लेट गया। 'कल कैसे बाहर निकलूँगा, कैसे मुँह दिखाऊँगा?' यही सोचता रहा। फिर सोचने लगा—इस घर से ही मेरा कौन सा नाता रह गया! घर से ही क्यों, दुनिया में ही मेरा कौन बैठा है! फिर यह जीवन! बहने दो इसे मुक्त सरिता की तरह, कहीं शान्त और सरल, कहीं भीषण और कुटिल, कभी तपस्वियों का सा वन-विचरण, कभी

शहरी शोहदों के से सैर सपाटे, सदा अपनी मौज में मस्त, कोई अपनी मौज में बाधक हो तो उसे समूल बहा दो और बह जाओ।'

रात ही रात उसने प्रवास का निश्चय किया। एक झोले में आवश्यक सामान रखने लगा। जी में आया दो एक पुस्तकें भी रखलें। पुस्तकों के सन्दूक में सुलोचना के हाथ का लगा हुआ ताला अब तक बंद था। आज उसने ताला खोल दिया।

पुस्तकों ने विद्यार्थी-जीवन की याद दिलाई। ये पुस्तकें उसे पारितोषिक में मिली थीं। इन पर उसके नाम लिखे हुए थे और उसके नीचे कालेज के प्रिंसिपल का हस्ताक्षर था। इन्हें देख देख कर लोग दीपचंद की सराहना करते थे। कौन सा दीपचंद? वही जो आज चोरी के जुर्म में जेल काट कर आया है। उसने तीन पुस्तकें निकालीं और तीनों पर से दीपचंद का कलंकित नाम मिटा दिया और उसकी जगह लिख दिया—'दीपक'।

चौथी पुस्तक निकाल रहा था। एक विचित्र वस्तु उसके हाथ में पड़ गई। नीले मखमल से मढ़ी हुई पुस्तक के आकार की एक छोटी सी पेटी थी। इसे देख कर उसे आश्चर्य हुआ। उसे खोलते ही धुँधली रोशनी में बिजली सी चमक उठी, हार देखकर वह दंग रह गया। फिर उसी पेटी में उसे कागज़ का एक टुकड़ा मिला। उस पर लिखा था :—

'दीपचंद बाबू,

मेरी ओर से यह हार उसके गले में डाल दीजिएगा जो कभी आपकी होगी।

सुलोचना।'

'ऐसा हार पहनाने के लिये और कोई नहीं मिली ? आपने मेरे ही ऊपर धावा बोल दिया !' मुस्कुराते हुए डाक्टर अमरवेलि ने कहा।

एक खाली रिक्शा काशी स्टेशन से लौट रहा था। अमरवेलि और दीपक जी रिक्शे में बैठ गये। रिक्शा चल पड़ा। शरद ऋतु की रात थी। हवा- की मीठी थपकी लगने लगी। नींद के झूले में झूलती हुई अमरवेलि बार बार दीपक जी से टकराने लगी। रिक्शा रुकते ही उसकी आँखें खुलीं। चबूतरे पर चढ़ कर उसने स्विच दबाया। भीतर घंटी बजी। भीतर से आवाज आई 'खोलती हूँ।'

दीपक जी जाने लगे। लेकिन एक बजे का समय था। आये हुए अतिथि का इतनी रात में द्वार से लौट जाना अमरवेलि को उचित न जँचा। उसने उन्हें रोक लिया।

कमरे में बिजली की रोशनी चमक उठी। फिर किवाड़ खुल गये। दीपक जी के साथ अमरवेलि भीतर गई।

माँ को भोजन करा दिया था सोना ?' अमरवेलि ने पूछा।'

'बारह बजे तक आपकी राह देखती थीं। घबरा रही थीं। समझाने से मान गईं। अभी भोजन करके सोई हैं। रसोई तो ठंडी हो गई। दूसरी बना दूँ ?'

'क्या खाइएगा दीपक जी ?' अमरवेलि ने पूछा।

'जलूस में जाने से पहले ही मैंने भोजन कर लिया था।' दीपक जी ने कहा।

'तो आप दूध पीजिये।' अमरवेलि ने कहा। उसने थर्मस मँगाया।

दीपक जी को दूध पिला कर ऊपर के कमरे में सोने का प्रबन्ध करा दिया स्वयं भी दूध पीकर ऊपर ही दूसरे कमरे में सो गई।

—:o:—

(१४)

स्वप्न

साँझ से अब तक बोतल-वाहिनी की एक बूँद भी गले में न गई। नींद कैसे आती! करवटें बदलते तीन बज गये, जैसे नींद ने मानकर रक्खा हो। विचारे दीपक जी उठ बैठे। फिर उन्होंने स्विच दबाया। रोशनी फैल गई। एक बार जेब में हाथ डाला। हाथ के साथ चार इंच लम्बी धागे से बँधी हुई शीशी जैसी गोल पुड़िया निकल आई।

पुड़िया को लिये लिये, सिर को हाथ का और हाथ को तकिये का सहारा देकर कुछ देर तक सोचते रहे। फिर पलंग से उतर कर खड़े हो गये। उन्होंने पुड़िया फिर जेब में रख ली।

दीपक जी के पलंग के पास ही एक द्वार था। द्वार की दूसरी तरफ़ दूसरा कमरा था। उसमें अमरवेलि सो रही थी। नींद तो आई नहीं, सोचा कि जागती हो तो उसी से कुछ बातें करूँ। उन्होंने किवाड़ पर ज़ोर लगाया। द्वार दूसरी ओर से बन्द मिला। अब क्या हो?

दीपक जी बरामदे में आये। अमरवेलि के कमरे की खिड़की खुली थी। बिजली की रोशनी, में पलँग पर पड़ी हुई, वह परी सी

चमक रही थी। मुँह खिड़की की ओर था, लेकिन खिड़की में जंगला लगा हुआ था।

खिड़की के पास खड़े होकर दीपक जी ताकते रहे। फिर एक बार उन्होंने छड़ के ऊपर उँगली से मारा। हलकी सी आवाज़ हुई। किन्तु इस आवाज़ का कोई उत्तर न मिला, बल्कि अमरबेलि ने मुँह फेर लिया। उसने करवट बदल ली। दीपक जी धीरे से बोल उठे—'अमरबेलि'। इसका भी कोई उत्तर न मिला।

दीपक जी कमरे की दीवारों को ध्यान से देखने लगे। द्वार की किवाड़ पर उनकी आंखें रुक गईं। किवाड़ के ऊपरी भाग में शीशा जड़ा हुआ था और उस शीशे का एक कोना टूट गया था। उसमें हाथ जा सकता था। उसमें हाथ डालकर दीपक जी उँगलियों से कुछ टटोलने लगे। खट से आवाज़ आई। द्वार को बन्द करने वाली कील गिर पड़ी। द्वार खुल गया। दीपक जी भीतर जा पहुँचे।

दीपक जी ने चारों ओर आंखें दौड़ाईं। मेज़, मेज़पोश, कुर्सी, फूलदान, शृंगारदान, आइना, पुस्तकें, नेताओं के चित्र, दृश्यों के चित्र सब कुछ देख गये। उनकी आंखें एक जगह रुक गईं। शीशे के साथ एक फ्रेम टँगा हुआ था। उसमें कोई तस्वीर न थी। रेशमी कपड़े पर सुई धागे से कढ़े हुये ये शब्द थे—

'ऐसी जिन्दगी बिताओ कि मरने के बाद भी हड्डियों से रोशनी निकलती रहे।'

'मरते, मरते, जलते, जलते, अन्धों की आंखें खोलती रहूँ।'

इन्हें पढ़कर दीपक जी ने फिर अमरबेलि की ओर ताका। ऐसा जान पड़ा जैसे पांडे जी कान में कह रहे हों—

'यह असाधारण स्त्री है।'

'साधारण वस्तु दीपक नहीं चाहा करता, पांडेजी।' झट दीपक जी ने मन ही मन उत्तर दे डाला। उनके चेहरे पर गर्व-मिश्रित उत्साह चढ़ गया। उसी उत्साह में उन्होंने जेब से लम्बी गोल पुड़िया निकाल ली। ऊपर बँधा हुआ धागा तोड़कर फेंक दिया। पुड़िया खुलते ही दीप-शिखाओं की माला की तरह सोने का हार चमक उठा।

हाथ में हार लिये दीपक जी फिर अमरबेलि का मुँह देखने लगे। शायद दीपक जी की इस चेष्टा पर अथवा किसी सुखमय स्वप्न की थपकी पाकर सहसा अमरबेलि हँस पड़ी। यह हँसी दीपक जी के लिये निमंत्रण बन गई। झट उन्होंने उसके गले में हार डाल दिया और उसी पलँग पर बैठ गये। बिजली की माला पहने मानो चन्द्रमा मुस्करा रहा था। चकोर की प्यासी आंखें उसी पीयूष को पी रही थीं।

लेकिन यह क्या! मुस्कुराहट की चाँदनी अधिक देर न खिल सकी। देखते ही देखते विषाद-भरे बादलों ने चन्द्रमंडल को ढँक लिया। क्या उस चमकती हुई बिजली ने बादल ला दिये! दीपक जी को ऐसी ही शंका हुई। फिर भी वह देखते रहे। नींद में भरी हुई अमरबेलि की मुख-मुद्रा बदलती गई। विषाद का बादल बढ़ता गया, बढ़ता गया, चेहरे का रंग बदलता गया, सहसा चीखकर चार इंच ऊँची वह उछल पड़ी।

'क्या हुआ! क्या हुआ!' कहते हुए दीपक जी ने उसे उठा लिया। उसका हृदय धक धक कर रहा था और सारा शरीर काँप रहा था। उसे हिला हिलाकर दीपक जी होश में लाये।

होश में आते ही आंखें मलकर उसने चारों ओर देखा। अपने आपको दीपक जी के हाथों में देखकर उसे विस्मय हुआ। वह उठ कर कुर्सी पर बैठ गई। फिर अपने गले में पड़े हुये हार को उसने देखा। उसे उतार कर उसने पलँग पर रख दिया। उसने कहा—

'किवाड़ तो बन्द थे, आप कैसे आ गये ?'

'वह देखिये, शीशा टूटा हुआ है।' दीपक जी ने कहा।

'मैं इतने ज़ोर से चौंक उठी कि आप की नींद भी टूट गई ? आज आपको बड़ी तकलीफ़ हुई।'

'आप क्यों चौंक उठीं ?'

'स्वप्न देखकर।'

'इतना भयानक स्वप्न !'

'पहले बड़ा मनोरम, फिर बाद में उतना ही भयानक।'

'उसका कुछ अंश सुन सकता हूँ ?'

ज़रा सोचकर उसने कहा—सुनिए। उपवन से फूल चुन चुन कर हार बना रही थी। कोई आया, मुस्कुराया, मेरा ही हार मेरे गले में डालने लगा। मैं भागने लगी। वह मेरे पीछे दौड़ा। भागते भागते मैं उड़ने लग गई, बिल्कुल कोयल की तरह कूकती हुई। उसने भी मोर की तरह पंख फैला कर मेरा पीछा किया।' कहती कहती अमरबेलि रुक गई।

'सचमुच बड़ा सुन्दर स्वप्न है, कह डालिए।'

'मैं नहीं कह सकूँगी।'

'क्यों ?'

'यह न पूछिए।'

'आलोक' के साहित्यिक भाग के लिये शायद आपका स्वप्न बड़ा अच्छा मसाला हो सकता है। किसी का नाम न दीजिये। लोग उसे कल्पित स्वप्न समझेंगे।'

'कभी लिख दूँगी।'

'कभी' नहीं, अभी लिख सकती हैं। स्वप्न बहुत जल्द भूल जाता है। आप उसे ज्यों का त्यों लिखकर दीजिये। उसमें कहीं कहीं पांडे जी काट छांटकर लेंगे। चाहे आप ही कर लीजिएगा।'

'अच्छी बात है। आप जाकर सो जाइए। मैं लिख लूँगी, फिर काट छाँटकर आपको दे दूँगी।'

दीपक जी जाकर लेट रहे। अमरवेलि लिखने लगी।

'चाँदनी हँस रही थी। निर्झर गा रहा था। मस्त पवन थपकियाँ दे रहा था। पेड़ों से लिपटी हुई लतायें काँप रही थीं। यह चंचल मन वहीं रम गया। मैं रुक गई। मैंने देखा, मेरे सामने फूलों के हार से अपनी भुजाओं को सजाये पारिजात खड़ा था। मैं उसी पर बैठ गई।

इस पारिजात के दोनों ओर दो रास्ते थे। दोनों कुछ दूर तक प्रायः समानान्तर थे। एक रास्ते के किनारे किनारे फूल और फल से लदे हुए पेड़ खड़े थे। उसी रास्ते के सिरे पर नन्दन वन था। दूसरा रास्ता कँटीली झाड़ियों में होता हुआ खड्ड में चला गया था।

उसी पारिजात की डाल पर बैठी हुई, मैं नन्दन वन की ओर निहार रही थी। आँखों में आलस्य रम रहा था। सहसा कुछ प्राणियों का आर्तनाद सुनाई पड़ा। यह क्रन्दन नीचे की कँटीली झाड़ियों से आ रहा था। मैं कान लगा कर सुनने लगी। मेरा

हृदय काँप उठा, इस क्रन्दन में मेरी माँ का कंठ-स्वर सुनाई पड़ा। पारिजात की डाल से कूद कर कँटीली झाड़ियों की ओर मैं दौड़ने लगी।।'

'फिर पीछे से निषेध-सूचक आवाज़ आई। मैंने गर्दन मोड़ कर पीछे देखा—अब वहाँ फूलों से लदा हुआ पारिजात न था, तुम थे, तुम कह रहे थे—

'उधर मत जाओ अमरबेलि, ठोकर खाकर काँटों में गिर जाओगी।'

'काँटों के पलने में ही अमरबेलि पली है दीपक जी, बबूल ही उसका सच्चा स्नेही रहा है, पारिजात नहीं।' मैंने कहा।

'इधर देखो, नन्दन वन हँस रहा है।'

'उधर देखो, मेरी माँ रो रही है। मत रोओ माँ, आ रही हूँ।'

आगे आपकी कोई बात न सुनकर खड्ड की ओर दौड़ पड़ी। ज्यों-ज्यों निकट पहुँचती गई अनेक कंठस्वर एक में केन्द्रित होते गये। मैंने अनेक प्राणियों का अनुमान किया था। वहाँ मेरी माँ जैसी केवल एक वृद्धा थी। न जाने कब की भूखी प्यासी कँटीली झाड़ियों में पड़ी हुई तड़प रही थी। 'उसे कैसे निकालूँ' यही सोचने लगी, तब तक मेरे कान में किसी के पैरों की आवाज़ पड़ी, पीछे देखा, तुम चले आ रहे थे। तुमने माँ को झाड़ियों के बाहर निकाला। फिर तुम पानी की खोज में चले गये। मैं उसके काँटे काढ़ने लगी। वह वृद्धा मेरे मुख की ओर निहार रही थी। मेरा मुँह देख देख कर जैसे उसका विषाद कटता जा रहा था। उसके स्थान पर सौम्यता चली आ रही थी। मैंने पूछा—

'तुम्हारा घर कहाँ है, माँ ?'

'अपने घर की पहचान बताऊँ ? मेरे घर की मीनारें दुनिया की सारी मीनारों से उज्ज्वल और ऊँची हैं।'

'तुम्हारे बेटी-बेटे ?'

'चालीस करोड़ हैं बेटी।'

'उनके होते हुये तुम यहाँ कैसे।'

'सबों ने मदिरा पी। उन्मत्त होकर आपस में लड़ने लगे। लड़ते-लड़ते थक कर ऐसे चूर हो गये कि अब हाथ भी नहीं हिला पाते। अवसर देखकर असुरों ने मुझे यहाँ डालकर यह दशा कर दी।'

इसी बीच में तुम पानी लेकर आ गये। वृद्धा को पानी पिलाते हुए मैंने कहा—'देखते हो दीपक जी, यह चालीस करोड़ बेटों की माँ है।' तुम उसकी ओर निहारने लगे। उसकी सारी बातें सुन कर तुमने कहा—

'तुम रास्ता दिखाओ माँ, मैं तुम्हें घर पहुँचाऊँगा। मैं असुरों से नहीं डरता, उनकी आसुरी मिटा दूँगा।'

वृद्धा ने उँगली उठाकर एक ओर को संकेत किया। हम उसी ओर ताकने लगे। वन-पर्वत, नदी-निर्झर के बीच धान-पान, फल-फूल और केसर-कस्तूरी से सम्पन्न एक विशाल भव्य भवन था। उसकी उज्ज्वल ऊँची मीनारें आकाश की ऊँचाई नाप रही थीं।

हमें उधर निहारते देख, पहले एक, फिर अनेक दानव निकल आये। बड़े-बड़े दांत और मशाल जैसी आँखें चढ़ाकर हमें घूरने लगे। एक ओर हाथ उठाकर उन्होंने पहाड़ जैसा हड्डियों का ढेर दिखाया।

उनका आशय समझ कर तुमने पिस्तौल निकाल ली। तब तक एक दानव दोनली बन्दूक़ निकाल लाया। उसने हमको लक्ष्य बनाया। तुम्हारी पिस्तौल से पहले उसकी बन्दूक़ गरज उठी। मैं चीख़ पड़ी।'

स्वप्न की कहानी समाप्त हुई। उसे मेज़ पर छोड़कर वह बरामदे में आई। दीपक जी सो रहे थे। उषा की लाली छिटक रही थी। वह स्नान के लिये नीचे चली गई।

स्नान करके जब वह फिर ऊपर आई तो धूप निकल चुकी थी। दीपक जी उठ चुके थे। उसी के कमरे में बैठे हुये स्वप्न की कहानी पढ़ रहे थे। हार वैसे ही पलँग पर पड़ा था।

'सोना जलपान ला रही है दीपक जी, तैयार हो जाइए।'

'धन्यवाद, तकल्लुफ़ में न पड़िए। आपको देर हो जायगी। घर जाकर ही जलपान करूँगा। एक बात पूछना चाहता था। इसीलिए रुक गया।'

'कौन सी बात ?'

'इसे क्या करूँ ?' हार दिखाकर दीपक जी ने कहा।

'अभी मुझे काम करना है दीपक जी, हार पहनने के लिये मेरे पास अवकाश नहीं है। समय आने पर बतला दूँगी।'

'तब तक यहीं पड़ा रहे तो क्या हानि है ?'

'छोड़ जाइए।'

दीपक जी के साथ अमरबेलि नीचे के कमरे में आई। वहाँ नरेन्द्र बैठा था। उसने नमस्कार किया।

'कैसे आये नरेन्द्र ? क्या सेवा करूँ ?'

'इस समय आपको अस्पताल जाना है। कोई समय दीजिए, तभी आकर कहूँगा।'

'तो सायंकाल आठ बजे मिलिए।'

'धन्यवाद।' कहता हुआ नरेन्द्र दीपक जी के साथ चला गया।

—:o:—

(१५)

बेटी के बाप

'कहाँ लड़ाई हो रही है, कहाँ दंगा हो गया, ऐसी खबरें तो गाँव में रोज ही आती थीं। शहर जाने वाले कोई न कोई खबर ले ही आते थे। लेकिन आज तो महेश मिश्र पूरा अख़बार ले आये। उनके चेहरे पर प्रसन्नता भी चमक रही थी।

'कोई ख़ास ख़बर है क्या ?' देवकी ने पूछा।

'लो देखो।' अख़बार पकड़ाते हुये मिश्र जी ने कहा।

'मैं क्या पढ़ना जानती हूँ ?'

'तस्वीरं तो पहचान सकती हो। देख कर बताओ, किसकी तस्वीर है ?'

'हीरा है क्या ?'

'हाँ, डाक्टर अमरबेलि हैं। अब ख़बर सुनो—हिन्दू मुसलमानों में अभूतपूर्व सौहार्द।'

'इसका क्या मतलब ? हिन्दू मुसलमान लड़ गए ?'

'अरे नहीं, उनमें ऐसा मेल हुआ जैसा कभी नहीं हुआ था। आगे सुनो—डाक्टर अमरबेलि की सूझ।'

'उसे तो पहले भी सूझता था। क्या वह बीच में अन्धी हो गई थी ?'

'कैसी मूर्ख हो ! इतना भी नहीं समझती हो ?'

'तो समझा कर कहो।'

'अमरबेलि को ऐसी बात सूझ गई जो कभी किसी को सूझी ही नहीं। सुनती चलो—रामलीला के जलूस में मुसलमानों का नेतृत्व। सारे रास्ते बाजा बजता गया।'

'मुसलमानों का नेतृत्व ! 'नेतृत्व' क्या ?'

'ब्राह्मण की बेटी होकर संस्कृत का एक शब्द भी नहीं समझती हो !'

'थोड़ा-सा संस्कृत तुम्हीं पढ़ा दो।'

'मैं ही कहाँ का महामहोपाध्याय हूँ ?'

'तब मुझे क्यों कहते हो ?'

'ब्राह्मण की सन्तान को एक दो शब्द तो जानना ही चाहिए। नेतृत्व का मतलब यह है कि इस बार रामलीला में जलूस के स्वामी मुसलमान लोग थे। उन्होंने ख़ूब बाजे बजवाए। जानती हो यह सब कैसे हुआ ?'

'भगवान जाने।'

'भगवान तो जानता ही है। कुछ तुम्हें भी जानना चाहिए।'

'तो तुम्हीं बतलाओ।'

'यह सब इसी लड़की की सलाह से हुआ। इसीलिए अख़बार में उसका चित्र छपा है।'

महेश मिश्र का आन्तरिक आह्लाद उनके चेहरे पर चमक रहा

था। वह चाहते थे कि वही चमक देवकी के चेहरे पर भी दिखाई पड़े। और वह भी कहे—'ऐसा क्यों न हो! है तो तुम्हारी ही बेटी!' लेकिन देवकी ने और ही कुछ कहा। उसने कहा—

'अखबार देख चुके हो तो मुझे दे दो।'

'तुम क्या करोगी?'

'अभी चूल्हे में आग है, इसे जला दूँगी।'

'क्यों?'

'क्योंकि यह गड़े हुए मुर्दे को उखाड़ देगा। जिन बातों को गाँव भूल चुका है, उनको ताजा कर देगा। लोग आपकी ओर उँगली उठायेंगे और कहेंगे—यह महेश मिश्र की बेटी है।'

'तो इसमें डरने का क्या कारण! मैं तो चाहता हूँ कि सारी दुनिया इस बात को जान जाय।'

'तुम्हारी पाप-कहानी को जान जाय! इससे तुम्हें मुँह चुराना नहीं पड़ेगा?'

'कैसी पाप कहानी? जिसका यह अखबार गुन गा रहा है, उसी के बाप को मुँह चुराना पड़ेगा?'

'तो उसका बाप कहलाने के लिये तुम तैयार हो?'

'क्यों नहीं?'

'लेकिन वह भी आपकी बेटी कहलाने के लिये तैयार है या नहीं, कभी यह भी सोचा?'

'वह तैयार हो या न हो, लेकिन मैं उसका बाप ही कहलाऊँगा।'

'बाप होकर कभी बेटी को देखने भी गये?'

'ऐसा तो नहीं कर सका।'

'कब करोगे ?'

'जब जरूरत पड़ेगी ।'

'जरूरत तो पड़ गई है। मेरी बात नहीं मानते हो। बुढ़ापे में रोना पड़ेगा ।'

'इस मामले में वह कर ही क्या सकेगी ?'

'बहुत कुछ कर सकेगी। वह डाक्टर है। अफसरों को भी उससे काम पड़ता होगा। कुछ न कर सके तो भी एक बार सारी बात उसे समझा देने में हर्ज क्या है ?'

'हर्ज तो कुछ नहीं है। लेकिन कौन सा मुँह लेकर उसके पास जाऊँ ?'

'बाप का मुँह लेकर जाओ, वह तुम्हारी बेटी है और इस बात को जानती है ।'

'यह भी तो जानती है कि बाप का कर्तव्य मैंने उसके साथ कभी नहीं किया ।'

'ऐसा सोचने से कोई लाभ न होगा। तुम न जाओगे तो मैं ही जाऊँगी ।'

'मैं ही चला जाऊँगा ।'

'कल ?'

'समय मिल सका तो कल ही चला जाऊँगा ।'

अगले दिन तीसरे पहर महेश मिश्र ने अमरबेलि का द्वार खटखटाया। सोना ने निकल कर कहा—

'डाक्टर नहीं हैं। आती होंगी, बैठिए ।'

'आपका शुभ नाम ?'

'महेश मिश्र।'

'कौन ?' भीतर से आवाज़ आई। सोना भीतर गई और फिर द्वार पर आकर बोली।

'भीतर आइए, माँ जी बुला रही हैं।'

बाहर के कमरे में जूते उतार कर सोना के पीछे-पीछे महेश मिश्र भीतर पहुँचे। चटाई पर बैठ कर फुलिया सूत कात रही थी। सोना ने कुर्सी रख दी। महेश मिश्र बैठ गये।

'भला आप आये तो सही, क्या खातिर करूँ ? मेरे हाथ का पानी भी तो नहीं पी सकते।'

'पानी की जरूरत नहीं है। अभी पीकर आ रहा हूँ।'

घंटी बजी। सोना ने जाकर द्वार खोला। अमरबेलि ने भीतर आकर पूछा—

'ये जूते किसके पड़े हैं सोना ?'

'महेश मिश्र आये हैं।'

'हलवाई के पास चली जा। कहना पाव भर मिठाई और एक लोटा कुएँ का ताजा पानी जल्दी भेज दे।'

'क्यों कष्ट कर रही हो अमर बेटी ? तुम्हें अच्छी हालत में देखना ही मेरे लिये मिठाई और पानी है।' भीतर से ही महेश मिश्र बोले।

भीतर पहुँच कर अमरबेलि महेश मिश्र का पैर छूने लगी। उसका हाथ रोक कर मिश्र जी ने कहा—

'क्यों लज्जित करती हो बेटी ? इस योग्य मैं नहीं हूँ कि मेरा पैर छुओ ।'

'और आपकी क्या सेवा करूँ ?' माँ के पास चटाई पर बैठकर अमरबेलि ने कहा ।

'मेरी सेवा करना चाहती हो ? इस पुराने पीपल को सूखने दो बेटी, तुम अपने भाई की सेवा करो ।'

'सुरेश कहाँ है ?'

'यहीं विश्वविद्यालय में पढ़ता है । वह बड़ा हो गया । मेरी बात नहीं मानता । उसी के कारण मेरी नौकरी छूटना चाहती है ।'

'बात क्या है ?'

'सारा भेद मैं भी नहीं जानता । इतना ही जानता हूँ कि ख़ुफ़िया पुलिस उसके पीछे लगी रहती है । पहले वह मेरे साथ कोठी पर रहता था । वहाँ पुलिस वाले जाने लगे । तब साहुजी ने मुझे बुला कर कहा—इन लोगों का मेरे दरवाज़े पर आना मुझे पसन्द नहीं । ये सुरेश को ही पूछने के लिये आते हैं । इसलिये उसको कहीं दूसरी जगह रक्खो । तभी से वह दूसरी जगह रहता है । ख़र्च लेने के लिये महीने में एक बार मुझसे मिलता है । चाहता हूँ कि कोई नौकरी कर ले, ऐसा भी नहीं करता । इसीलिये तुम्हारी चाची ने मुझे भेजा है ।'

'अपने आप तो सुरेश आवेगा ही नहीं, कभी उसे ला नहीं सकते ?'

'मैं तो उसे आज ही लाना चाहता था, लेकिन अपने डेरे पर

नहीं था। उसके साथी ने बतलाया कि टाउनहाल गया है। वहाँ कोई मीटिंग होने वाली है।'

'उस मीटिंग में मुझे भी जाना है।'

'उसकी मीटिंग में जाती हो, फिर भी उससे भेंट नहीं होती?'

'आज पहली ही बार जा रही हूँ। उन लोगों ने बुलाया है। आप भी चलिये। समय हो चुका है।'

'तो मेरी वजह से तुम्हें रुकना पड़ रहा है?-मैं चलूँ तो मेरी शकल देखते ही वह खिसक जायगा। तुम उसे देख भी न सकोगी।'

'अच्छी बात है, मिठाई आ गई है। आप जल पी लीजिए।' कह कर अमरबेलि कपड़े बदलने लगी। महेश मिश्र मिठाई खाने लगे।

वह बाहर निकलने लगी तो उसके साथ महेश मिश्र भी निकले। साइनबोर्ड पर उनकी आंखें पड़ीं। उस पर लिखा था—डाक्टर अमरबेलि एम० बी० बी० एस०।

'केवल अमरबेलि न लिखकर तुम्हें 'अमरबेलि मिश्र' लिखना चाहिए बेटी।' महेश मिश्र ने कहा।

कोई उत्तर न देकर अमरबेलि ने केवल मुस्कुरा दिया?

—:०:—

(१६)

मौत की सगी सहेली

अमरबेलि टाउनहाल में पहुँची। उस समय पांडे जी का भाषण समाप्त हो रहा था। स्टेज पर पहुँचते ही अमरबेलि ने एक

सुडौल एवं सुन्दर खद्दरधारी युवक को देखा। अमरबेलि को देखते ही उस नवयुवक ने नमस्कार किया।

'कभी मिले भी नहीं सुरेश !' अमरबेलि ने कहा।

'मिलूँगा बहिन !' सुरेश ने कहा।

भाषण समाप्त करके पांडे जी ने अमरबेलि का परिचय दिया और उनसे बोलने के लिये आग्रह किया।

अमरबेलि खड़ी हुईं। एक छोटा सा भाषण दिया। उन्होंने कहा—

'प्यारे भाइयों, मेरा परिचय कुछ बढ़ा-चढ़ाकर दिया गया है। सृष्टि में अनेक जीव हैं, उन्हीं में से एक मैं भी हूँ। जहाँ तक किसी को सुखी बनाने में काम आ सके वहीं तक इस जीवन की सार्थकता समझती हूँ। कभी आपको मेरी सेवाओं की आवश्यकता पड़ जाय, आपका कोई संकट काट सकूँ, तो उससे मेरी आत्मा को शान्ति मिलती है। वही शान्ति मेरे लिये स्वर्ग है। आप भी इस सिद्धान्त पर चल सकें तो वह घर, वह गाँव, वह देश और वह संसार, जिसमें आप रहेंगे, स्वर्ग बन जायगा। इस संसार से परे किसी अन्य स्वर्ग की कल्पना करने वाला स्वयं राक्षस बन जायगा और अपने समाज को, देश को, और सारे संसार को नर्क बना देगा। आपने नहीं देखा है ? स्वर्ग और मोक्ष का कामुक, तीर्थ-यात्रा करने के लिये गाड़ी में चढ़ते समय, खूब धक्कम धुक्का करता है। अपने से निर्बल यात्री को धक्का देकर गाड़ी से नीचे, नर्क में गिरा देता है। आप भी ऐसे स्वर्ग का स्वप्न देखते होंगे तो वहाँ का क़ीमती टिकट कटाने के लिये बेगुनाहों का गला काटेंगे और स्वर्ग

की गाड़ी में घुसने के लिये निर्बल समाज को नर्क में डाल देंगे।'

'भाइयो, जहाँ मेरा एक पैर स्वर्ग में है, दूसरा नर्क में भी है। किसी किसी प्राणी को ऐसे दलदल में मैं फँसा हुआ देखती हूँ कि प्राण देकर भी उसे सुखी नहीं कर सकती। ऐसी बेवसी मेरे लिये नर्क की यंत्रणा बन जाती है।'

'देश के अधिकांश लोग आज ऐसे ही दल दल में फँसे हुए हैं। मैं उनकी कोई सहायता नहीं कर पाती हूँ, उनके किसी काम नहीं आती हूँ। यही बेबसी मुझे जलाती रहती है। क्या आप कुछ सहायता कर सकेंगे ?'

'कहते हैं यह देश भगवान का लीला-क्षेत्र रहा है। इसी देश में सुदामा का दारिद्र्य भगवान कृष्ण ने मिटा दिया था। लेकिन आज सुदामा की सन्तान दाने दाने के लिये मुहताज है। इसी देश में उन्होंने द्रौपदी की लज्जा बचाई थी, लेकिन आज द्रौपदी की बेटियों को तन ढाँकने के लिये वस्त्र नहीं मिलता है। आप भी तो उसी भगवान कृष्ण की सन्तान हैं, आपकी आँखों के सामने बहिनों और माताओं की यह दुर्दशा ! ऐसा दुःशासन ! लेकिन आप तो स्वयं भयातुर होकर भगवान् भगवान् चिल्लाते रहते हैं। आप क्या दूसरों की सहायता करेंगे ! अरे भोले भाई, क्या आपकी नसों में भगवान का, राम और कृष्ण का, भीम और अर्जुन का, शिवा और प्रताप का रक्त नहीं उबल रहा है ! उनका दिया हुआ रक्त क्या पानी हो गया ? आप क्यों नहीं विश्वास करते कि आपही राम और कृष्ण हैं। आपने ही रावण और कंस का वध किया

था और आज भी आप को ही रावणता मिटानी है। आपके चिल्लाते ही देवकी की बेणियाँ तड़ातड़ टूट सकती हैं। आप के सिंहनाद से भूमंडल काँप उठेगा, लेकिन हम आप एक साथ चिल्लाते भी तो नहीं। हम तो अनेक समुदायों, अनेक सम्प्रदायों और अनेक वर्गों में बँटे हुए हैं। वर्ण और वर्ग का मिथ्याभिमान हमें एक नहीं होने देता। ऊपर से हम भाईचारे का दम भरते हैं, ढोंग रचते हैं, लेकिन भीतर चोर बैठा है। हम तो बिल्कुल खीरे की तरह हैं। ऊपर से देखने में लम्बे, चिकने और एक, लेकिन भीतर ही भीतर तीन फाँक। हृदय में तीन तीन दरारें पड़ी हैं। गुलाम होते हुए भी हममें से एक वर्ग, दूसरे वर्ग को नीच और अछूत समझता है। इस गुलामी की हालत में भी हमारा यह दावा है कि एक विशेष जन-समुदाय से आज ही नहीं, प्रलय तक झाड़ू ही लगवाते रहेंगे। जब हमारा ही आपस में ऐसा बर्ताव है तो हम किस मुँह से दूसरों से बराबरी का अधिकार माँग सकते हैं ?'

हमारे इसी भेद भाव ने, हमारे पूर्वजों की भूल ने देश के बँटवारे का दुराग्रह खड़ा कर दिया है। लेकिन अब तो बँटवारे का समय नहीं रहा। पर्वत और समुद्र भी आज देश की सीमा नहीं बना सकते। आज तो आवश्यकता इस बात की है कि सारा भूमंडल एक विशाल भवन समझा जाय और प्रत्येक देश उसका एक एक कमरा। यदि एक कमरे में भी आग लगेगी तो सारा मकान, सम्पूर्ण भूमंडल मानवमात्र की चिता बन जायगा। आज तो विश्व के सम्पूर्ण मानव समुदाय को एक अखंड परिवार समझना चाहिए और प्रत्येक जाति या नेशन को उस अखंड

परिवार का एक सदस्य। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त तो बहुत पहले बन गया था। लेकिन आज उसे व्यवहार में लाने का समय आ गया है। मुझे आशा है कि आपका संघ सारे भेद-भावों को मिटाकर सच्ची एकता स्थापित करेगा। और इस प्रकार आपको संगठित तथा शक्तिशाली बना कर दुनिया के हर कोने से गुलामी का अन्त कर देगा और 'वसुधैव कुटुम्बकम् का प्रचार करेगा।'

भाषण समाप्त हुआ। करतल-ध्वनि हुई। फिर दीपक जी का परिचय देकर पांडे जी ने उन्हें भाषण देने के लिये कहा। दीपक जी कहने लगे—

'प्यारे विद्यार्थियो! आपका संगठन देख कर मुझे सन्तोष है। शिक्षण-संस्थाओं में जो कुछ कमी है, मुझे आशा है कि यह संघ उसे पूरा कर देगा। सबसे पहले आपको मनुष्य बनना है। आपको मनुष्य बनाने के लिये इस देश में जो मशीनें खड़ी की गई हैं, वे आप में मनुष्यत्व का पर्याप्त विकास नहीं कर पातीं। बड़े बड़े विश्वविद्यालय भी आपके मस्तिष्क में दासता का ही बीज बो रहे हैं। मैं आपके सामने बोल रहा हूँ। आप मेरे विचारों को सुन रहे हैं। मेरे विचारों की रोशनी में मुझे न पहचान कर, पांडे जी के दिये हुए परिचय का चश्मा आँखों पर चढ़ा कर, आप मुझे पहचानने का प्रयत्न करें तो क्या यह दिमागी गुलामी न कहलायेगी? जो नाटक, जो काव्य आप पढ़ते हैं उनके पात्र, पात्रों के चरित्र-लेखकों की शैली और सफलता के सम्बन्ध में आप अपना कोई फ़ैसला न दे सकें, दूसरों के दिये हुए फ़ैसले

को रटलें और ज़रूरत पड़ने पर उसी को उगल दें, तो क्या यह दिमाग़ी ग़ुलामी नहीं होगी ?

साहित्य में ही नहीं, आचार-व्यवहार के क्षेत्र में भी युनिवर्सिटियों के ग्रेजुएट और वेद-शास्त्रों के प्रकांड पंडित आँखों पर अन्धविश्वास का चश्मा लगा कर संसार में प्रवेश करते हैं। ऐसे लोग इतिहास को हज़ार दो हज़ार वर्ष पीछे की ओर पलटना चाहते हैं। कोई वैदिक काल लाना चाहता है, कोई पौराणिक। उनकी समझ में यह नहीं आता कि नदी आगे को बहती है, उसे पलट कर पीछे ले जाने में अपनी शक्ति का दुरुपयोग होगा। जिस ढंग पर किसी ज़माने में समाज का संगठन हुआ था आज वह टिक नहीं सकता। उसके लिये हाय हाय मचाने से काम नहीं चलेगा। उसके सम्बन्ध में बाबापंथी ढंग से नहीं, स्वतंत्रतापूर्वक विचार करना होगा।

लेकिन यहाँ तो एक तरफ़ परीक्षाओं की आंच में सुखा सुखा कर आप अंगूर से मुनक्के बनाये जा रहे हैं, दूसरी तरफ आपके दृष्टिकोण को धुँधला और विचार-बल को गंदला किया जा रहा है। बच बचा कर उस मशीन से किसी प्रकार बाहर निकले तो आप इसी योग्य रह जाते हैं कि किसी आफ़िस में साहब की डाट डपट सहकर या उसके आगे दुम हिलाकर अपनी रोटी दाल जुटालें। आपकी चालाकी से या सामाजिक संगठन के दोष से, आपके हाथ में कोई साधन, कोई अधिकार आ गया तो आप जोंक बन जायँगे और किसी का रक्त चूस चूस कर, भगवान की

इस देन पर, अथवा अपने कल्पित पराक्रम पर फूल फूल कर मगर या अजगर बनने के लिये मुँह बाते रहेंगे।

व्यक्ति ही नहीं, संसार के अनेक राष्ट्र आज जोंक, मगर और अजगर बन गये हैं। सारे भूमंडल को एक परिवार बनाने से पहले घर की सफ़ाई करनी ही पड़ेगी। जोंक, मगर और अजगरों का संहार आपको ही करना है। प्राणों की बाजी आप ही लगा सकते हैं। समाज के दक़ियानूसी संगठन को आप ही पलट सकते हैं। समाज में, देश में, सारे ब्रह्मांड में आने वाला इन्क़लाब आपकी ही राह देख रहा है।'

इन्क़लाब शब्द के साथ ही सारे विद्यार्थियों ने इन्क़लाब ज़िन्दाबाद के नारे लगाये। सारा हाल गूँज उठा। शोर बंद होने पर दीपक जी फिर बोले—

'वह इन्क़लाब कब आवेगा? जब आपकी दिमाग़ी ग़ुलामी दूर हो जायगी। जब आप अपनी आँखों पर बंधी हुई अंध-विश्वास की पट्टी फाड़ कर फेंक देंगे, जब भाग्य और भगवान के भरोसे न रह कर अपने आपको अपने दुख और सुख का नियामक समझेंगे। जब आप यह समझ लेंगे कि प्रकृति ने अपनी ओर से प्रत्येक प्राणी को विकास का एक-सा साधन दे रक्खा है। यदि आप ऐसे साधनों से वंचित हैं तो यह आपके साथ अत्याचार है और आपकी कमज़ोरी है। आपको चाहिये कि ऐसे साधनों को अत्याचारी के हाथ से छीन कर आपस में बाँट लें। ऐसे संघर्ष में डटकर आपको अत्याचारियों से लोहा लेना चाहिए और मौत का सामना करना चाहिए। मौत तो पग-पग पर अपना जाल बिछाए,

घात लगाए बैठी है। उस जाल को कुचलता हुआ, जो बेधड़क क़दम बढ़ाता है, वही सच्चा शूर है, वही आज़ाद है। याद रखिए—आज़ादी मौत की सगी सहेली है। इसलिये आप उस उत्सव की तैयारी कीजिए, जिसमें आपके सामने मौत नाचेगी, आज़ादी तालियाँ बजावेगी। यदि आपने मौत का हाथ पकड़ लिया तो आज़ादी आपके पैरों पर नाक रगड़ेगी और आपकी दासी बनकर आपके इशारों पर नाचेगी। इसलिये विद्या, बुद्धि, बल और स्वास्थ्य जो कुछ भी आप प्राप्त करें सब उसी उत्सव, उसी विराट विप्लव के लिये करें। उस नाटक के खेलने के लिये आज से ही आपकी नसें फड़कती रहें। मानवमात्र को विश्व-बन्धुत्व का अमृत पिलाने से पहले आपको समुद्र-मंथन करना ही पड़ेगा।'

दीपक जी का भाषण समाप्त हुआ। जोश के साथ करतल-ध्वनि हुई। फिर नरेन्द्र ने कहा—

'भाइयो! यह मानना ही पड़ेगा कि ऊधम मचाने में हममें से कुछ लोगों की अधिक प्रवृत्ति होती है। ऐसा न हो कि हमारा संघ हुल्लड़बाजों का अड्डा बन जाय। इसलिये मैं चाहता हूँ कि हमारे जोश, हमारे उत्साह, हमारी शक्ति के प्रवाह की सीमा बँध जाय। हम जो कुछ करें उसी सीमा के भीतर करें ताकि हमारी शक्तियाँ अनुचित दिशाओं में बह कर नष्ट न हों, बल्कि निर्दिष्ट मार्ग से लक्ष्य की ओर बहती रहें। इसलिये मैं चाहता हूँ कि एक प्रतिज्ञापत्र तैयार किया जाय और उस पर सारे सदस्य हस्ताक्षर करें। उसकी एक-एक प्रति अपने कमरों में टाँग दें, जिससे हर वक्त हमारी आँखें उन्हें देखती रहें और हम उन प्रतिज्ञाओं

को भूल न सकें। इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि संघ का प्रतिज्ञा-पत्र बनाने के लिये सर्वश्री दीपक जी, करुणेश जी पांडे और सुश्री डाक्टर अमरबेलि की एक उपसमिति बनाई जाय।"

प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया। फिर पदाधिकारियों का चुनाव होने लगा। प्रधानत्व के लिये दीपक जी का नाम प्रस्तावित हुआ। उन्होंने बहुतेरा बचना चाहा, लेकिन विद्यार्थियों के हठ के आगे उनकी एक भी न चली। फिर डाक्टर अमरबेलि उपनेत्री, सुरेश मिश्र मंत्री और नरेन्द्र जी उपमंत्री चुन लिये गये।

बाहर निकल कर दीपक जी ने अमरबेलि से कहा—

'किस चक्कर में फाँस दिया डाक्टर ?'

'मैंने फाँस दिया ?' अमरबेलि ने पूछा।

'तुमने तो छुटे हुए साँड़ को बैलगाड़ी में जोत दिया।'

'उड़ती हुई आजाद चिड़िया को सोने की जंजीर में बाँधने के लिये कौन दौड़ा था ?'

—:o:—

(१७)

प्रतिज्ञापत्र

अमरबेलि और दीपक जी के भाषण 'आलोक' में छपे। उन्हें पढ़ते ही चार पाँच शिक्षण-केन्द्रों के छात्रों ने उनका भाषण सुनने के लिये उन्हें निमंत्रित किया। अमरबेलि को अस्पताल के काम से ही अवकाश न मिला, लेकिन दीपक जी भी कहीं न गये। 'अवकाश नहीं है। आने में असमर्थ हूँ। क्षमा करें।' इसी प्रकार का उत्तर उन्होंने सबको लिख दिया।

लेकिन विद्यार्थी-समुदाय ने इतने से ही हार न मानी। एक दिन प्रयाग के विद्यार्थी आलोक आफ़िस में आ पहुँचे। दीपक जी को जाना ही पड़ा। फिर कानपूर और मेरठ के विद्यार्थी आये। इस बार भी उन्हें जाना ही पड़ा। ये भाषण भी पत्रों में छपते रहे। दो महीने में उन्हें पूरे प्रान्त की परिक्रमा करनी पड़ गई। सभी शिक्षण केन्द्रों में उनके भाषण हुए।

प्रान्त के बाहर से भी उनके पास निमंत्रण आने लगे। तीसरे महीने में पटना, नागपुर, दिल्ली और लाहौर में उनके भाषण हुए। दीपक जी के लिये छात्रों के हृदय में श्रद्धा और सम्मान बढ़ गया। जहाँ जहाँ उन्होंने भाषण दिये वहाँ वहाँ छात्रसंघ स्थापित हुए। इस प्रकार छोटे बड़े मिलाकर अनेक स्थानों में बीसों संघ स्थापित हो गये। लेकिन इन संघों में पारस्परिक सम्बन्ध न था। सबके अलग अलग नियम और उद्देश्य थे। आवश्यकता इस बात की थी कि देश के सारे छात्रों का एक ही उद्देश्य और एक ही लक्ष्य हो। सबकी एक ही आवाज हो। इस एक 'केन्द्रीय छात्र संघ' के संस्थापन का प्रस्ताव भी आने लगा। इसके आयोजन का भार भी दीपक जी को ही उठाना पड़ा।

'केन्द्रीय छात्र संघ' के संस्थापन का विचार दीपक जी ने काशी के छात्रों के सामने रक्खा। उन्होंने इसका स्वागत किया और यह आग्रह किया कि 'केन्द्रीय छात्र संघ' के संस्थापन का गौरव काशी को ही प्राप्त हो। अपने उत्साही छात्रों के सहयोग से दीपक जी ने एक स्वागत-समिति बनाई और कई एक उप-समितियाँ बनाकर आयोजन का सारा भार बाँट दिया। सर्व-

सम्मति से सत्ताइस और अट्ठाइस दिसम्बर को अधिवेशन करना निश्चित हुआ।

आने वाले प्रतिनिधियों के स्वागत के लिये छब्बीस दिसम्बर को ही स्टेशनों पर स्वयं सेवक भेज दिये गये। झंडी झंडे फूल पत्ते और बिजली के बल्ब से टाउनहाल सजने लगा।

सत्ताइस दिसम्बर आ गया। फाटक के ऊपर मचान बन गया था। उसमें नौबत बज रही थी। ठीक पाँच बजे फाटक के सामने एक कार रुकी। सभापति के साथ दीपक जी उतरे। फाटक से पंडाल तक छात्र और छात्राएँ स्वागत के लिये खड़ी थीं। उनका स्वागत स्वीकार करते हुए सभापति जी पंडाल में पहुँचे। आये हुए प्रतिनिधियों ने उठ कर उनका स्वागत किया। बिजली के बल्ब जल उठे। सभापति जी ने आसन ग्रहण किया। कुछ छात्राएँ माला लिये आईं। स्वागत गान करके उन्होंने सभापति जी को मालाएँ पहनाईं।

भाषण देते हुए सभापति जी ने काशी के इतिहास का उल्लेख किया और बतलाया कि बुद्ध, शंकराचार्य, रामानंद, कबीर और तुलसी ऐसे ही अनेक गुरु इस स्थान में आसन जमाकर अपने अमूल्य उपदेश दे गये हैं। उन उपदेशों को ग्रहण करने के लिये देश के कोने कोने से छात्र-समुदाय आता रहा है। उसी ऐतिहासिक नगरी में देशव्यापी छात्र-संघ का संगठन उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है। आज यहाँ सारे प्रान्त के प्रतिनिधि आये हैं, कल सारे देश के प्रतिनिधि आवेंगे और कभी सारे विश्व के प्रतिनिधि यहाँ एकत्रित होंगे। इस पर हर्षपूर्ण करतल-ध्वनि हुई।

फिर उन्होंने बतलाया कि समाज में, देश में, सम्पूर्ण विश्व में कोई क्रान्ति उत्पन्न करना चाहता है, कोई इन्क़लाब लाना चाहता है तो उसे चाहिए कि अपना सन्देश बुड्ढे खुर्राटों को नहीं, छात्रों को सुनावे। कोरे कागज़ पर लिखने में कठिनाई न होगी। आज के विद्यार्थी कल समाज के, देश के और राष्ट्र के कर्णधार बनेंगे। अभी से उनके कोमल मस्तिष्क में इन्क़लाब का बीज बो दीजिए, समय आने पर इन्क़लाब का पौधा, पत्ते फूल और फल से लदा हुआ लहलहा उठेगा।

अन्त में उन्होंने यह आशा प्रगट की कि यह संघ पहले अपने देश के, फिर सारे संसार के शिक्षण-केन्द्रों से अपना सम्पर्क स्थापित करेगा और शीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनने का गौरव प्राप्त करेगा। इस प्रयास में सफलता हुई तो विश्वव्यापी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याएँ अपने आप सुलझ जायँगी।

भाषण के पश्चात् संघ की काररवाई शुरू हुई। दीपक जी ने कहा—

'साथियो, अब तो छात्रों में काफ़ी जागृति आ गई है। अनेक स्थानों में संघ स्थापित हो चुके हैं। आज केन्द्रीयसंघ स्थापित हो रहा है। इसका भी उद्देश्य आप जानते हैं। हम चाहते हैं कि देश के सारे छात्रों का एक ही लक्ष्य और एक ही आवाज़ हो। इसके लिये आवश्यक है कि सारे छात्रों के सामने कुछ प्रतिज्ञाएँ रक्खी जायें और वे उन पर हस्ताक्षर करें और प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ता के साथ डटे रहें। इस प्रकार का एक प्रतिज्ञा-पत्र पहले से बन चुका है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग उस पर विचार

कर लें और आवश्यकतानुसार उसमें संशोधन और परिवर्द्धन कर लें।'

प्रतिज्ञापत्र की छपी हुई प्रतियाँ प्रतिनिधियों में बाँट दी गईं। दीपक जी ने उसे पढ़ना आरम्भ किया—

'पहली—सबसे पहले हम मनुष्य हैं। धर्म, मजहब और सम्प्रदाय बनावटी चीजें हैं। भूमंडल का सारा मानव-समुदाय हमारा कुटुम्ब है। इस विशाल कुटुम्ब को सुखी देखने के लिये सारे व्यक्तिगत कष्टों को सन्तोषपूर्वक सह लूँगा।

दूसरी—किसी भी ऐसे साम्प्रदायिक सिद्धान्त को नहीं मानूँगा जो मानव-समुदाय में पारस्परिक कटुता का विष बोता है।

तीसरी—मानव-समुदाय के सुख में बाधक होने वाली सभी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों को बदल डालना मेरे संघर्ष का लक्ष्य होगा।

चौथी—मैं मानता हूँ कि प्रत्येक प्राणी को शारीरिक और मानसिक विकास का समुचित साधन और पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। मैं स्वयं इस सिद्धान्त पर चलूँगा और दूसरों को चलाने का प्रयत्न करूँगा।

पाँचवीं—संघ को अपना कुटुम्ब समझूँगा और मेरे पास जो भी साधन होंगे चौथी प्रतिज्ञा के अनुसार उन्हें आपस में बाँट लूँगा।

छठी—अपने संघ को देशव्यापी और विश्वव्यापी बनाने का प्रयत्न करूँगा।

सातवीं—नियम, नायक, नेता और गुरू का शासन मानूँगा।

प्राण-संकट उपस्थित होने पर भी अनुशासन से बाहर न जाऊँगा।"

सभी लोगों ने प्रतिज्ञाओं का समर्थन किया। केवल एक सज्जन ने कहा—देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये भी एक प्रतिज्ञा होनी चाहिए।

दूसरे सज्जन उसी दम बोल उठे—तीसरी प्रतिज्ञा को फिर से पढ़िए। उसके अन्तर्गत देश की ही स्वतंत्रता नहीं, मानवमात्र की स्वतंत्रता का प्रश्न आ जाता है। साथ ही स्वतंत्रता ही नहीं, स्वशासन में दोष हो तो उससे भी मोर्चा लिया जायगा।

सर्वसम्मति से प्रतिज्ञापत्र स्वीकृत हुआ।

फिर एक प्रतिनिधि ने प्रस्ताव रक्खा कि एक उपसमिति बनाई जाय जो सारे देश की यात्रा करे और देश के सारे विद्यार्थियों से इस प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करावे।

इस सम्बन्ध में कुछ लोगों ने कहा—यहाँ सभी संघों के प्रतिनिधि आये हैं। ये लोग यहाँ से जाकर अपने अपने संघ के छात्रों से प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करा सकते हैं।'

दूसरे ने कहा—वे तो करायेंगे ही, लेकिन ऐसी उपसमिति बनाई जाय और वह देश का दौरा करे तो शीघ्रता से संघ का प्रचार हो सकता है।

अन्त में यह प्रस्ताव भी पास हुआ। पहले कार्यकारिणी के सदस्यों का चुनाव हुआ, फिर उन्हीं सदस्यों में से सात सदस्यों की उपसमिति बनाई गई, जिसको संघ के प्रचार का कार्य सौंपा गया। इसमें डाक्टर अमरबेलि और दीपक जी को भी शामिल किया गया।

आये हुए प्रतिनिधियों के विनोदार्थ स्थानीय छात्र और छात्राओं ने रात्रि में दस बजे से रंगमंच पर कला-प्रदर्शन का आयोजन किया था। सब को भोजन और कुछ विश्राम का अवकाश देने के लिये आठ ही बजे सभा स्थगित कर दी गई। अन्य कार्यों के लिये अगले दिन प्रातः आठ से ग्यारह बजे तक का समय नियत कर दिया गया।

—:०:—

(१८)

तीन समस्यायें

'हुल्लड़बाजों का दल महत्व पूर्ण संस्था बन गया गुरुदेव?'

'बनाने से पशु भी मनुष्य से अधिक उपयोगी बन जाता है, नरेन्द्र। न बनाने से मनुष्य भी पशु से पीछे रह जाता है। जंगल में लकड़ी काटने वालों का वह मूल्य कहाँ होता है जो शिकारी कुत्तों और पोलो खेलने वाले घोड़ों का होता है। पशुओं को भी छोड़िए, लकड़ी या पत्थर का टुकड़ा भी कारीगर के हाथ में पड़ कर कई सौ की चीज़ बन जाता है।'

'ऐसे अच्छे कारीगर होते हुए भी अब तक दीपक जी अंधकार में क्यों थे गुरुदेव?'

'मनुष्य भी बड़ा स्वार्थी जीव है नरेन्द्र; अपनी कारीगरी, अपनी कला और अपनी शक्ति का प्रयोग या तो आत्मसुख के लिये करता है या उनके लिये करता है जिनको अपना समझता

है। जिसका कोई होगा ही नहीं, वह किसके लिये अपने बल-पौरुष का प्रयोग करेगा ?'

'एक बात मेरी समझ में नहीं आई।'

'क्या ?'

'जो दीपक जी बोतलों के पानी की मस्त लहरों में दिन रात डूबे रहते थे आज उन्हीं के सोने और खाने का समय भी निश्चित नहीं है। आधी आधी रात तक चिट्ठियों का उत्तर लिखते रहते हैं। जितने पैसे एक अचकन की सिलाई के लिये दे डालते थे उतने ही पैसों में आज धोती कुर्ता टोपी और चप्पल सब कुछ खरीद लाते हैं। इस परिवर्तन को स्वार्थ कहेंगे या त्याग ?'

'बच्चा बिस्तर को गीला कर देता है। उसे सूखे भाग में खिसका कर माँ गीले भाग में लेट जाती है। इसे स्वार्थ कहोगे या त्याग ?'

'बच्चे के सुख के लिये कष्ट उठाती है, इसलिये यह त्याग हुआ।'

'ऐसा न करने से उसे दुख होता, आत्मसुख के लिये ऐसा करती है, इसलिये यह स्वार्थ हुआ।'

'इस तर्क से ऐसे महात्मा भी स्वार्थी ठहराये जा सकते हैं जो मानवमात्र को सुखी देखने के लिये प्राणों की ममता नहीं रखते। उनमें और साधारण प्राणी में कोई अंतर ही न रह जायगा।'

'बहुत बड़ा अंतर रहेगा। आत्मसुख की कामना दोनों में है। दोनों में अपनत्व है। लेकिन एक का अपनत्व संकुचित है और दूसरे का विशाल। सबसे छोटा अपनत्व बँदरिया में देखोगे।

उसके आगे रोटी का टुकड़ा फेंक दो तो पहले आप खायगी। उसी का बच्चा रोटी की ओर लपकेगा तो उसे पटक देगी। कोई कोई मनुष्य भी उसी बँदरिया की श्रेणी में आ सकता है। उससे अधिक विकसित वह मनुष्य है जिसका अपनत्व कुछ बढ़ा हुआ होता है। उसमें उसके बेटी-बेटे और परिवार के लोग समा सकते हैं, किन्तु अन्य प्राणी के लिये उसमें कोई गुंजाइश नहीं। उसे ही हम साधारण प्राणी कह सकते हैं। इससे आगे मनुष्य का अपनत्व जितना व्यापक होता जायगा हम उसे उतना ही बड़ा महात्मा कहेंगे। पूर्ण महात्मा का अपनत्व इतना व्यापक और विशाल होगा कि मानवमात्र उसमें समा जायगा। इसीलिये उसको महा-आत्मा कहते हैं।'

'तब तो दीपक जी भी महात्मा हो जायँगे।'

'दीपक जी महात्मा हो जायँगे! कौन बनायेगा?' कहते हुए दीपक जी ने प्रवेश किया।

'महात्माओं को भी कोई बनाता है?' नरेन्द्र ने कहा।

दीपक जी बोले—बिना बनाये तो कोई चीज़ बनती ही नहीं। हर चीज़ का बनाने वाला कोई न कोई अवश्य होता है।

नरेन्द्र ने कुछ सोचकर कहा—

'मुझे तो महा-आत्मा और परम-आत्मा दोनों एक से ही दीखते हैं। दोनों अनादि और अनन्त हैं। जब परमात्मा, परमेश्वर, भगवान को बनाने वाला कोई नहीं हो सकता तो महात्मा को बनाने वाला भी कोई नहीं हो सकता।'

दीपक—तुमने तो एक और प्रश्न उपस्थित कर दिया।

नरेन्द्र—वह क्या ?

दीपक—भक्तों को किसने बनाया ?

नरेन्द्र—भगवान ने।

दीपक—यही तो समस्या है, भगवान ने भक्तों को बनाया या भक्तों ने भगवान को बनाया ?

नरेन्द्र—भगवान ने भक्तों को बनाया। इसे तो सारी दुनिया मानती है।

दीपक—सारी दुनिया जिन बातों को मानती है वे सारी ही बातें ठीक हों—ऐसा तो नहीं है। बहुत सी बातों को आँखें बन्द करके दुनिया इसलिये मानती है कि वे बातें युगों से उससे मनवाई जाती रही हैं।

नरेन्द्र—फिर आप ही बतलाइए।

दीपक—यह तो नहीं कह सकता कि भगवान ने भक्तों को बनाया या नहीं, लेकिन इतना दावे के साथ कह सकता हूँ कि भगवान को भक्तों ने बनाया।

नरेन्द्र—कैसे ?

दीपक—जैसे आप लोग दीपक जी को महात्मा बना रहे हैं।

नरेन्द्र—हम आपको क्या बनायेंगे ! आपका सम्पर्क हमें बना रहा है।

दीपक—किसका सम्पर्क किसे बना रहा है, इसका उत्तर शायद पांडे जी तुम्हें दे सकें। इन्हीं से पूछो।

इसी समय रिक्शे से उतर कर डाक्टर अमरबेलि ने कमरे में प्रवेश किया, उन्हें देखते ही पांडे जी ने कहा—

'ऐसे प्रश्न का उत्तर मैं भी न दे सकूँगा। सम्भव है डाक्टर अमरवेलि दे सकें।'

'कैसे प्रश्न का उत्तर ?' अमरवेलि ने पूछा।

पांडे जी ने कहा—एक तरफ़ हुल्लड़वाजों का संघ एक महत्व-पूर्ण संस्था वन रहा है। दूसरी तरफ दीपक जी महात्मा वने जा रहे हैं। यह सव किसके सम्पर्क से हो रहा है ? इसी की खोज हो रही है। इस खोज में मेरी बुद्धि तो हार मानती है। आप डाक्टर हैं, शायद आप इसका समाधान कर सकें।

अमरवेलि के कपोलों पर हलकी सी लाली छा गई। आँखें झुक गईं। झट उन्होंने इस पर मुस्कुराहट का पर्दा डालकर कहा—

'जिस तत्व की खोज दीपक जी और आप जैसे खोजक नहीं कर सकते, उस मोती को अथाह सागर से मैं कैसे ला सकूँगी ? कोई साधारण वात पूछिए तो जवाव भी दूँ।'

'साधारण वात पूछ रहा हूँ। २७ जनवरी को कानपुर में कार्य-कारिणी की वैठक है। आप कहीं तो जाती ही नहीं। यहाँ के लिये क्या कहती हैं ?' दीपक जी ने कहा।

'मैंने पहले ही कहा था कि मुझे उसमें न रखिए। अव आप ही वतलाइए, रोगियों को देखूँ या कार्य-कारिणी को ?' अमरवेलि ने कहा।'

'रोगियों के लिये और डाक्टर भी हैं।' पांडे जी ने कहा।

'रोगियों के लिये और डाक्टर भी अवश्य हैं, लेकिन जिनकी सेवा का भार मैंने ले रक्खा है, उन्हें देखे विना मुझे सन्तोष नहीं होता।' अमरवेलि ने उत्तर दिया।

'जान पड़ता है आप उस स्वप्न को भूल गईं जिसमें आपने चालीस करोड़ सन्तानों की माँ को देखा था।' दीपक जी ने याद दिलाई।

'भूली नहीं हूँ। माँ का सपूत, माँ के सामने पहुँच गया है। वह अपना काम करे। मैं अपना कर रही हूँ।' अमर ने उत्तर दिया।

आफिस के सामने इक्का रुका। हाजी पीर मुहम्मद ने कमरे में पैर रक्खा। लोग आदर के लिये उठे। नरेन्द्र ने उनके सामने एक कुर्सी सरका दी। बैठते हुए हाजी मियाँ ने अमरबेलि से कहा—

'कई साल बाद दशहरे पर आप मिलीं भी तो घर तक न गईं। आपने हम लोगों को बिल्कुल ही भुला दिया!'

'यही शिकायत मुझे भी है। आपने घर से भगा दिया और कभी खोज खबर भी नहीं ली।' अमरबेलि ने कहा।

'ऐसा तो नहीं है। आपको मालूम नहीं है, लेकिन मैंने कई बार आपका पता लगाया था। मुझे मालूम हो गया कि आप ठीक जगह पहुँच गई हैं। तब मैं आपकी तरफ से बेफिकिर हो गया। घर वाले आप को भूले नहीं हैं। आप अभी चलिए' हाजी मियाँ ने कहा।

'घरवालों को मैं भी नहीं भूली हूँ। कई बार आने का विचार किया, लेकिन समय न मिला।' अमरबेलि ने कहा।

'इस तरह कभी समय न मिलेगा। इक्का खड़ा है, आप अभी बैठ जाइए और मेरे साथ चलिए।' हाजी मियाँ ने कहा।

'पहले अपना काम कर लीजिए।' अमरवेलि ने कहा।

'आज कैसे कृपा की ?' पांडे जी ने पूछा

'कृपा नहीं की, मुहल्ले वालों को रोटी नहीं मिल रही है। वे ग़रीब मेरे पास आये, मैं आपके पास आया हूँ।'

'आप नगर-पिता हैं, हाजी साहब, रोटी के लिये मुहल्ले वाले आपके पास नहीं जायँगे तो जायँगे किसके पास ? लेकिन मैं आप की क्या सहायता कर सकता हूँ ?' पांडे जी ने कहा।

'आप सम्पादक हैं। आपके पास प्रेस है। आप वहुत कुछ कर सकते हैं।'

'जो कुछ आप लिख लिखा कर देंगे उसे छाप दूँगा। लेकिन इससे तो अधिकारियों के कान पर जूँ भी नहीं रेंगती। दुकानदार, सरकार और सरकारी-कर्मचारी सव अपनी अपनी जेवें भरने में लगे हैं। उन्होंने यह सोच रक्खा है कि लोगों को वकने दो अपना उल्लू सीधा करो।'

'फिर भी कुछ करना चाहिए।

'हम कर ही क्या सकते हैं ? वड़े अफ़सरों के पास वड़े ही पहुँच सकते हैं।'

'वड़े तो चाहते हैं कि यही हालत बनी रहे। इसी की वदौलत वे और भी वड़े होते जा रहे हैं। मर रहे हैं वेचारे ग़रीव। गेहूँ चावल के नाम पर कभी कूड़ा करकट मिल भी जाता था। कई दिनों से वह भी वंद है। चोर वाजारों में ग़ल्लों की कमी नहीं है। लेकिन रुपये सेर का गेहूँ वेचारे ग़रीव कैसे ख़रीदें ?'

'ज़िला-मैजिस्ट्रेट के पास एक डेपुटेशन जाना चाहिये।' डाक्टर अमरबेलि ने कहा।

'क्या राय है दीपक जी ?' पांडे जी ने पूछा।

'अन्धे के आगे रोना, अपनी आँखें खोना।' दीपक जी ने उत्तर दिया।

'आप ठीक कहते हैं, लेकिन सिवा रोने के दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं दीखता !' हाजी मियाँ ने कहा।

'आज के अकाल की ज़िम्मेदारी आसमान पर नहीं है, सरकार और सरकार के पिट्ठुओं पर है। उन्होंने अकाल पैदा कर रक्खा है। अब तक गोदामों में गेहूँ सड़ रहा है। ग़रीब सचमुच भूखों मर रहे हैं तो क्यों नहीं उन गोदामों पर धावा बोल देते ? कुछ तो खाने को मिलेगा ही।'

'बिल्कुल ठीक, भूखों मरने से गोलियाँ खाकर मरने में कम ही तकलीफ़ होगी।' दीपक जी के कथन का समर्थन करते हुए नरेन्द्र ने कहा।

'शायद ऐसा ही करना पड़े। लेकिन इससे पहले एक बार सीधा रास्ता पकड़ना मुनासिब होगा।' हाजी मियाँ ने कहा।

'अच्छी बात है। ऐसा ही होगा।' पांडे जी ने कहा।

'कब ?' हाजी मियाँ ने पूछा।

'कल तो यह लोग कानपुर जा रहे हैं।' पांडे जी ने कहा।

'कल कैसे जा सकते है ! कल स्वतंत्रता-दिवस मनाया जायगा।' नरेन्द्र ने विरोध करते हुए कहा।

'कल के लिये एक सौ चौवालीस लग चुका है।' पांडे जी ने उत्तर दिया।

'आपके शिष्य एक सौ चौवालीस की परवाह नहीं करेंगे, गुरु-देव ! स्वतंत्रता-दिवस अवश्य मनाया जायगा।' नरेन्द्र ने कहा।

'कहाँ ?' पांडे जी ने पूछा।

'दशाश्वमेध घाट पर, सायंकाल साढ़े तीन बजे। कल सवेरे ही सारे शहर में इसकी नोटिस बँट जायगी।' नरेन्द्र ने कहा।

पांडे जी ने दीपक जी की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि डाली। दीपक जी ने कहा—

'मुझे इनकी योजना का कोई पता नहीं। चुपचाप मारखाने के लिये यह सब करना मुझे नहीं जँचता। लेकिन संघ से बाहर ये लोग स्वतंत्र हैं। जो चाहें कर सकते हैं।'

'तो दिन में नहीं, कल रात की गाड़ी से आप लोग कानपुर चले जाइए। आपके लौटने पर डेपुटेशन की तारीख़ निश्चित की जायगी।' पांडे जी ने कहा।

'कहिए, चल रही हैं ?' हाजी मियाँ ने अमरवेलि से पूछा।

'अभी तो दो चार दिन में फिर आपसे मुलाक़ात होगी, तभी चलूँगी।' अमरवेलि ने कहा।

'मेरी राय तो यह है कि कल सुबह दीपक जी और पांडे जी को साथ लेकर आप मेरे यहाँ आवें। एक बार मुहल्ले वालों की हालत तो देख लें।' हाजी मियाँ ने फिर कहा।

'ख़ूब देख रही हूँ। अस्पताल में आधे से अधिक रोगी ऐसे आ रहे हैं जो रद्दी राशन खाकर बीमार पड़ते हैं। रोज़ाना दो एक

रोगी ऐसे आते हैं जो चार चार दिन के भूखे होते हैं। ऐसे ही रोगियों की संख्या बढ़ रही है और अन्न मिलता नहीं। यही हालत रही तो अस्पताल बन्द कर देना पड़ेगा।' अमरबेलि ने कहा।

'बेचारे रोगी कहाँ जायेंगे ?' उठते हुए हाजी मियाँ ने पूछा।

'इसका उत्तर भी जिले के अधिकारी से ही माँगना चाहिए।' कहकर अमरबेलि भी उठ गईं।

—:०:—

(१९)

कौन सी राह !

अगले दिन सबेरे ही किसी ने घंटी बजा दी। सोना बाहर आई। एक पर्चा फेंक कर वह लड़का चला गया। यह स्वतंत्रता दिवस की सूचना थी। साढ़े तीन बजे का समय नियत किया गया था। दस मिनिट पहले ही अमरबेलि दशाश्वमेध घाट पर पहुँच गईं। सीढ़ियों से ऊपर सड़क में पुलिस की मोटरबस खड़ी थी। घाट पर सशस्त्र पुलिस का पहरा था। बन्दूकों के साथ संगीनें चमक रही थीं। स्वतंत्रता-दिवस मनाने का कहीं कोई आयोजन न दिखाई पड़ा। जहाँ चार व्यक्ति खड़े होते वहीं पुलिस पहुँच कर उन्हें हटा देती। और दिन तो जगह जगह भजन कीर्तन होता रहता था, लेकिन आज भक्त लोग भी भगवान को भूल गये थे। शीतला देवी के चबूतरे पर चढ़ कर अमरबेलि इधर उधर देखने लगीं। तब तक पांडे जी के साथ दीपक जी वहीं पहुँच गये।

'यहाँ तो कुछ नहीं दीखता।' अमरवेलि ने कहा।

'अभी समय भी तो नहीं हुआ।' दीपक जी ने कहा।

'पाँच ही मिनिट बाक़ी हैं।'

'शायद पाँच ही मिनिट में कुछ दीख जाय।'

'विद्यार्थियों ने आप से कोई राय नहीं ली ?'

'मेरी राय का सवाल ही नहीं उठता। ये अपनी स्वतंत्र बुद्धि और काँग्रेस के आदेश से कर रहे हैं।'

'इन्क़लाब जिन्दाबाद' और 'भारतमाता की जय' के नारे सहसा सुनाई पड़े। सब की आँखें उधर गईं जिधर से आवाज़ आ रही थी। बीच धारा में एक नाव मंडला रही थी। खद्दरधारी सात सपूत उसमें बैठे थे। देखते देखते उसी नाव पर तिरंगा झंडा लहराने लगा। पुलिस वाले हड़बड़ा कर दौड़े और एक नाव में उतरने लगे। एक लाल पगड़ी वाले ने एक पैर नाव पर रक्खा था तभी नाव हट गई और वह छप से पानी में गिर पड़ा। लोगों को हँसी आई, लेकिन खुल कर हँस न सके। पुलिस की नाव तीर की तरह आगे बढ़ी। उधर झंडे वाली नाव भी धीरे धीरे घाट की ओर आ रही थी। नाव पर बैठे हुए स्वयं सेवक गा रहे थे—'विजयी-विश्व तिरंगा प्यारा।'

अमरवेलि की आँखें नाव पर जमी हुई थीं। नाव घाट के निकट आ गई। अमरवेलि के मुँह से एकाएक निकल गया—'सुरेश !'

'सुरेश ही तो है, आश्चर्य क्यों ?' दीपक जी ने पूछा। अमरवेलि ने कोई उत्तर न दिया। वह सुरेश की ओर ताकती रही। मुँह

से लाउडस्पीकर लगा कर सुरेश कह रहा था--'हम हिन्दुस्तानी लोग भी अन्य क़ौमों की भाँति अपना यह जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतंत्रत होकर रहें और अपनी मेहनत का फल ख़ुद भोगें। हम पुनः भारत की स्वाधीनता की प्रतिज्ञा करते हैं कि हमें जब तक पूर्ण स्वराज्य नहीं मिल जाता हम अहिंसक रीति से अपनी लड़ाई जारी रखेंगे।'

सुरेश की नाव में पुलिस उतर गई। लाउडस्पीकर छीन लिया गया। सातों स्वयं-सेवक 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगा रहे थे। नाव घाट पर आ गई। हाथ, पैर, गर्दन जो भी हाथ आया उसी को पकड़ कर पुलिस वालों ने स्वयं-सेवकों को नाव से घाट पर फेंका। कोई घाट पर, कोई पानी में गिर पड़ा। इन्क़लाब ज़िन्दाबाद के नारे अब भी लग रहे थे। उसे बन्द करने के लिये मुँह पर घूँसे बरसने लगे। घूँसे से घायल होकर सुरेश गिर पड़ा। 'हाय, मेरा भाई।' कहकर अमरवेलि तेज़ी से सुरेश की ओर चली।

'सुरेश अमरवेलि का भाई है क्या?' दीपक जी ने कहा।

'इन्हें रोकिए।' पांडे जी ने कहा।

'रुकिए' कहकर दीपक जी अमरवेलि के आगे खड़े हो गये।

'भाई मारा जाय, मैं देखती रहूँ?'

'आप रुकिये, मैं जाता हूँ।'

दीपक जी अमरवेलि को रोक कर आगे बढ़े। तब तक पास पहुँच कर पांडे जी ने कहा--

'सुरेश आपका भाई है, यह तो आज ही मालूम हुआ। फिर भी

अकेला सुरेश ही तो आपका भाई नहीं है। आपके भाइयों की संख्या बहुत बड़ी है। आपके ऊपर सब का समान अधिकार है। एक ही के लिये इस प्रकार विचलित होना आपके लिये उचित नहीं।'

उधर पुलिस इन्स्पेक्टर के पास पहुँच कर दीपक जी ने कहा—

'गिरफ़ार होने में ये लड़के कोई रुकावट नहीं डाल रहे हैं, फिर भी इन्हें पीटना ही आप अपना फ़र्ज़ समझते हैं ?'

'हमारे मामले में दख़ल देने वाले आप कौन होते हैं ?'

'इन्सान हूँ, आप भी इन्सान हैं। इन्सानियत के नाते हर एक को इतना कहने का हक़ होना चाहिए।'

'आपको भी बस में बैठा लीजिए दीवान जी, हम अपना काम कर रहे हैं, आप बीच में आ कूदे, इन्सानियत का सबक़ सिखाने के लिए।'

'आप ही दीपक जी हैं।' दीवान जी ने कहा।

'छोकरों को बहकाने वाले दीपक जी आप ही हैं! आपकी ज़रूरत थी।'

सातों स्वयं-सेवक और उनके साथ दीपक जी सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। उनके चारों ओर पुलिस की संगीनें चमक रहीं थीं।

'दीपक जी को भी लिये जा रहे हैं।' अमरबेलि ने कहा।

'उन्हें भी एक दिन जाना ही था। चलिए घर चलें।' पांडे जी ने कहा।

पांडे जी के साथ अमरबेलि सड़क पर पहुँची। सातों स्वयं-सेवक और दीपक जी पुलिस के साथ बस में बैठ चुके थे। सब ने अमरबेलि को नमस्कार किया। स्वयं-सेवकों के मुँह पर चोट के

चिन्ह देखकर अमरवेलि की आँखों में आँसू आ गया। उसकी ओर देखकर पुलिस इन्स्पेक्टर ने पूछा--

'आप ही डाक्टर अमरवेलि हैं ?'

'मैं भी चलूँ क्या ?' अमरवेलि ने पूछा।

'जल्दी क्या है, आपके लिये घर पर ही खबर भेज दूँगा। जाइए।' मुस्कुराते हुई इन्स्पेक्टर ने कहा।

फिर एक बार स्वयं-सेवकों पर दृष्टि डाल कर अमरवेलि आगे बढ़ीं। उसके साथ पांडे जी प्रेस में पहुँचे। उदास मुँह किए वहाँ नरेन्द्र बैठा था।

'यहाँ कैसे नरेन्द्र ?' पांडे जी ने पूछा।

'यहीं चला आया।' नरेन्द्र ने कहा।

'स्वतन्त्रता-दिवस मनाने नहीं गये ?'

'वहाँ मेरी आवश्यकता न रह गई।'

हम लोगों को तुम्हीं ने कल निमंत्रित किया था और तुम्हीं नहीं गये ! यह कैसी बात !'

'आज के कार्य में मुख्य भाग मेरा था, लेकिन चुपके से मेरा नाम कटवा कर सुरेश ने अपना नाम रखवा लिया। यह बात मालूम होने पर मैं चला आया।'

'इसका कारण तुमने नहीं समझा ? सुरेश ने तुम्हारे ऊपर बड़ा भारी बोझ डाल दिया। अब संघ का काम तुम्हें चलाना पड़ेगा।'

'ऐसा क्यों ?'

'क्योंकि सुरेश हवालात में गया। जाओ अपना सामान लेकर आओ। डाक्टर अमरवेलि के साथ कानपुर जाना होगा।'

'दीपक जी तो जा ही रहे हैं।'

'वह भी गिरफ़्तार हुए हैं।'

'किसलिये ?'

'कुछ पता नहीं। शायद कल मैजिस्ट्रेट के सामने ही अभियोग सुनाया जाय। जाओ, दस बजे स्टेशन पर मिलना।'

'आज नहीं जा सकूँगी पांडे जी ! कल आप कचहरी में मिलेंगे, वहीं इस बारे में सोचूँगी। जाना हुआ तो दोपहर की गाड़ी से चली जाऊँगी।' कह कर अमरवेलि चली गईं।

आज की गिरफ़्तारी की खबर साँझ तक सारे शहर में फैल गई। महेश मिश्र ने भी सुना। नौ बजे रात घर पहुँचे। साइकिल खड़ी कर रहे थे तब तक देवकी ने दसों प्रश्न कर डाले। अन्त में सारी बातें बतानी पड़ीं। वह सारी रात रोती रही। सवेरा होते ही इक्का मँगाया गया और महेश मिश्र के साथ वह कचहरी पहुँची।

वह पेड़ के नीचे बैठी थी। अमरवेलि ताँगे से उतरीं। उनको देखते ही वह फिर रोने लगी। अमरवेलि उसे धीरज देने लगीं। तब तक जेल की हवालात के पास पुलिस की मोटर बस खड़ी हुई। पुलिस के साथ सात स्वयं-सेवक उतरे और सीखचों के भीतर जाने लगे। सब का मुँह सूजा हुआ था। एक के बायें गाल पर बैंगनी लकीरें पड़ी हुई थीं। उसे देखते ही देवकी आँखें भर कर बोल उठी—'सुरेश !'

'माँ !'

'क्या देख रही हूँ बेटा ?'

'ठीक देख रही हो माँ, तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए।'

'मत बोलिए, बातें करने का हुकुम नहीं है।' दीवान जी ने कहा। वह सुरेश को सीखचों की ओर ले गया।

'ऐसी बेरहमी क्यों ? दूर दूर से दो बातें करलें तो क्या हर्ज है ?' इन्स्पेक्टर ने दीवान से कहा।

'आपका हुकुम है तो करलें।' दीवान ने कहा।

'यह आपका लड़का है ?' इन्स्पेक्टर ने महेश मिश्र से पूछा।

'जी हुजूर।' महेश मिश्र ने कहा।

'लड़के को क़बज़े में रखते तो ऐसी नौबत क्यों आती ?'

'बहुत समझाया लेकिन उसने न माना।'

'उसी का नतीजा भोग रहा है। फिर भी समझाते रहना आपका धरम है। और समझाइए।'

'उससे क्या कहूँ हजूर ?'

'वह जेल जायगा तो बेचारी माँ के दिल पर कैसी बीतेगी, यही उससे कह सकते हैं।'

'ऐसा दयावान अफ़सर कभी नहीं देखा हजूर।'

'हम भी तो इन्सान ही हैं। लेकिन हमारा काम ऐसा है कि बेरहम होना पड़ता है।'

'हुजूर सच कहते हैं।'

'मैं तो चाहता हूँ कि आपका लड़का जेल जाने से बच जाय लेकिन लड़का है बड़ा ज़िद्दी।'

'जब आप ही ऐसा चाहते हैं तो जरूर बच जायगा हुजूर।'

'मेरे चाहने से कुछ नहीं होता। मैं तो उपाय बता सकता हूँ।'

'चौदह रुपये महीने का नौकर हूँ हजूर, कौन सा उपाय करूँ ?'

'रुपये की ज़रूरत नहीं है। सिर्फ़ माफ़ी माँग ले छूट तो जायगा।'

देवकी को यह उपाय बड़ा सरल लगा। उसने अमरवेलि की ओर ताका। उसका आशय समझ कर अमरवेलि ने कहा।

'वह माफ़ी नहीं माँगेगा।'

'तब तो ज़रूर जेल जायगा।' इन्स्पेक्टर ने कहा।

'हम तुम समझावें बेटी, शायद तुम्हारी बात मान जाय।' देवकी ने अधीर होकर कहा।

'शायद' नहीं, डाक्टर अमरवेलि कहेंगी तो वह ज़रूर मान जायगा।' इन्स्पेक्टर ने कहा।

'तो बुला दीजिए।' अमरवेलि ने कहा।

'आप कोशिश कीजिए। जंट साहब इन छोकरों से बुरी तरह चिढ़े हैं। पेशी होते ही छः महीने के लिये लाद देंगे। उससे पहले माफ़ीनामा लिख दे तो इसी दम उसे छोड़ सकता हूँ।' कहकर इन्स्पेक्टर चला गया।

स्वयं-सेवकों के साथ दीपक जी को न देखकर अमरवेलि को आश्चर्य हो रहा था। पांडे जी अभी तक न पहुँचे, इसका भी कोई कारण उसकी समझ में न आया। इधर उधर आँखें डाल रही थी तब तक दीपक जी ताँगे से उतरते दिखाई पड़े। उन्हें देखते ही अमरवेलि ने पूछा—

'आपको छोड़ दिया क्या ?'

तब तक दीवान जी के साथ सुरेश सामने आया।

'फिर बतलाऊँगा। पहले सुरेश से बातें कर लो।' दीपक जी ने कहा।

'तुम अधीर होकर मुझे लज्जित कर रही हो, माँ। एक समय था जब मातायें हाथ में तलवार पकड़ा कर बेटे को शत्रु का सिर तोड़ने के लिये युद्ध में भेजती थीं। तुम जरा सी बात में आँसू बहा रही हो! मुझे फाँसी थोड़े ही होगी। अधिक से अधिक साल भर जेल में रहना पड़ेगा।' सुरेश ने कहा।

'जेल में रहने से कोई लाभ नहीं दीखता, सुरेश।' अमरवेलि ने कहा।

'लाभ हो या न हो, जाना तो पड़ेगा ही।'

'चाहो तो बच सकते हो।'

'माफी माँग कर?'

'हर्ज क्या है?'

'तुम भी ऐसी बात कहती हो, बहिन!'

'मैं कह रही हूँ, बेटा।' देवकी ने कहा।

'नहीं माँ, तुम भी नहीं कह रही हो। पुलिस इन्स्पेक्टर कहला रहा है। बड़ा धूर्त है।'

'धूर्त नहीं बेटा, वह तो बड़ा दयालु है।'

'उसकी दयालुता मेरे मुँह पर लिखी हुई है, माँ। हर आँख वाला उसे देख सकता है। इसीलिये चाहता है कि मैजिस्ट्रेट के सामने न जाऊँ। उसने झूठी दया दिखाई। तुम उसे सच्ची दया दिखा दो, माँ।'

'मैं क्या दया दिखाऊँगी, बेटा?'

'मेरे मुँह पर ये लकीरें नहीं देख रही हो? कोई पूछेगा कि ये किसके दस्तखत हैं तो मैं कोई जवाब न दूँगा। यही उसे बतला देना।'

'चोट के चिन्ह औरों के मुँह पर भी दीख रहे हैं, सुरेश, इनका ही डर होता तो वह सब को छोड़ देता।' अमरवेलि ने कहा।

'माफ़ीनामा लिखाकर वह सब को छोड़ देगा।'

'औरों से तो ऐसा नहीं कह रहा है।' अमरवेलि ने फिर कहा।

'वह समझता है कि सुरेश माफ़ीनामा लिख देगा तो दूसरे भी लिख देंगे। लेकिन हममें से कोई भी ऐसा नहीं करेगा।'

'चलिए, पेशी हो रही है।' पुलिस का दूसरा आदमी बुलाने के लिये आ गया।

'अब घर जाओ माँ। इजलास पर मत जाना। वहाँ जो कुछ होगा मैं यहीं बतला देता हूँ। हम लोगों को अधिक से अधिक साल भर की जेल होगी। माँ को लेकर घर जाओ, अमर बहिन।'

फिर उसने दीपक जी और महेश मिश्र को नमस्कार किया और पुलिस के साथ चला गया।

'घर चलो चाची।' अमरवेलि ने कहा।

'तुम जाओ बेटी, मैं चली जाऊँगी।' देवकी ने कहा।

देवकी और महेश मिश्र को नमस्कार करके अमरवेलि दीपक जी के साथ चली। उसने कहा—

'अभी गाड़ी मिल सकती है दीपक जी।'

'किसलिये?' दीपक जी ने पूछा।

'कानपुर के लिये, मीटिंग के समय तक पहुँच जायँगे।'

'कोई सरकारी सूचना तुम्हें नहीं मिली?'

'कैसी सूचना?'

'घर पर ख़बर भेजने के लिये कल इनस्पेक्टर ने कहा नहीं था ?'

'मैं तो यहाँ चली आई। शायद घर पहुँचने पर मिले।'

'अवश्य मिलेगी।'

'कैसी सूचना है ?'

'हम लोग कहीं जा नहीं सकते। किसी मीटिंग में शामिल नहीं हो सकते। कहीं भाषण नहीं दे सकते। ऐसा कुछ करना चाहें तो उसके लिये अनुमति लेनी पड़ेगी।'

ये बातें सुनकर अमरबेलि रुक गई। आश्चर्य के साथ उसने पूछा—'कितने दिन के लिये ?'

'इसका कोई उल्लेख नहीं है।' दीपक जी ने कहा।

'ऐसा शासन न मान कर जेल जाना ही उचित होगा।'

'ऐसा भी सोचा गया, लेकिन विशेष लाभ नहीं दीखता। इससे केवल उत्तेजना फैल सकती है।'

'कुछ तो करना ही चाहिए।'

'करना चाहें तो तुम्हें अवकाश कहाँ ?'

'आवश्यकता पड़ने पर अवकाश ले लूँगी।'

'तो सुनिए, यहाँ रहकर अब तक जो कुछ कर चुके हैं, उससे आगे रास्ता ही नहीं है। बस जेल की दीवारें हैं। अब तो संघ के आदर्शों का प्रचार दूसरे ही ढंग से करना होगा। शायद उस ढंग से इस शासन को हम अधिक चोट पहुँचा सकें।'

'वह कौन सा ढंग है ?'

'पांडे जी की राय है कि हम लोग विदेश जाकर वहाँ के

छात्रों में संघ के आदर्शों का प्रचार करें। आज भी हज़ारों भारतीय विद्यार्थी विदेशों में पढ़े हैं। उनसे इस कार्य में सहायता मिलेगी।'

'कहाँ चला जायगा ?'

'पहले अमेरिका, फिर जहाँ जहाँ जा सकें।'

'हमें इतना भयानक समझते हुए भी सरकार जाने देगी ?'

'अड़चनें पड़ सकती हैं, लेकिन जा सकें तो चलेंगी ?'

'पांडे जी की राय ठीक दीखती है।'

'तो अभी से पासपोर्ट प्राप्त करने का प्रयत्न करें।'

'आज ही दख़्वास्त दे दीजिए।'

'पहले फोटोग्राफर के यहाँ चलना होगा।'

'चलिए।'

कचहरी के पास एक ही फोटोग्राफर था। वेचारा वहरा और बूढ़ा था। फिर भी कोई भूला भटका उसके पास पहुँच ही जाता। दूकान की ओर दो ग्राहक आते देख कर उसने कहा—

'आइए बाबू जी, बहुत बढ़िया तस्वीर बनाऊँगा। आप देखते रह जायँगे।'

दोनों ग्राहक दूकान में पहुँचे। बड़े आदर के साथ उन्हें बेञ्च पर बैठा कर बुड्ढे ने कहा—

'यही काम करते करते बाल सफ़ेद हो गये बाबू जी, नमूना देख कर दंग रह जायँगे। देखिए, यह रायबहादुर तेजप्रताप वर्मा का फ़ेमिलीग्रप है। वही वर्मा साहब, जो आज कल

सेशन जज हैं। देखिए, इस बच्चे ने कैसा अच्छा पोज़ दिया है। कुछ और पोज़ दिखाऊँ।'

बुड्ढा एक पैकेट उठा लाया। उस पर की गर्द झाड़कर कार्ड साइज़ का एक एक चित्र दिखाने लगा।

उसने पहला पोज़ दिखाया। इसमें देवता जी देवी जी की उँगली में अंगूठी पहना रहे थे। उसे देख कर दोनों ग्राहक मुस्कराये।

उसने दूसरा पोज़ दिखाया। इसमें देवता जी देवी जी के साथ झूले में बैठे हुए थे। दोनों ग्राहक और भी मुस्कराए। अपनी कला का सम्मान देख कर उसने तीसरा पोज़ दिखाया। इसे देख कर अमरवेलि बहुत हँसी। इस चित्र में मेज़ पर आइना रक्खा हुआ था। उसके सामने बिखरे बाल वाली देवी जी कुर्सी पर बैठी थीं। उनके पीछे खड़े होकर हाथ में कंघी लिये देवता जी बाल सँवार रहे थे।

अमरवेलि की इस हँसी को बुड्ढे ने अपनी कला का भारी सत्कार समझा। उसने कहा—

'अभी क्या, अभी एक से एक बढ़िया पोज़ दिखाऊँगा।'

वह चौथा चित्र निकालने लगा तब तक अमरवेलि ने उसे रोक दिया और अपने हाथ का चित्र बुड्ढे को पकड़ा कर कहा—

'हमें तो पासपोर्ट साइज़ की अलग अलग तस्वीरें चाहिएँ।'

'अच्छी बात है। मैं तो एक से एक पोज़ दिखाता, लेकिन यह पोज़ भी बढ़िया है।'

कंघी वाला चित्र बुड्ढे ने हाथ में लिया और बाकी सारे चित्र

उसने रख दिये। पहले वह स्टूडियो में गया। फिर लौट कर आया और अमरबेलि को ले गया। पहले उसने अमरबेलि को कुर्सी पर बैठाया। फिर उसके सामने एक छोटी सी मेज़ रख दी। मेज़ पर आइना, कंघी और दो शीशियाँ रख कर वह दीपक जी को भी बुला लाया। अमरबेलि और दीपक जी इस साज सामान को, फिर एक दूसरे को देख कर मुस्कुराये। तब तक बुड्ढे ने अमर-बेलि के मुँह पर रोशनी डाल दी और बोला—

'पहले बीबी जी का पोज़ देख लीजिए। देखिए, चेहरा कैसा चमक रहा है !'

मुस्कुराहट के साथ साथ अमरबेलि की आँखों में लज्जा भी चली आई। उसने ज़रा सी आँखें झुका लीं। बुड्ढा बोल उठा—

'बस, बहुत ठीक, ऐसे ही रहिए।'

फिर दीपक जी को कंघीवाला चित्र दिखा कर, कंघी पकड़ाते हुए बोला—

'आप अपना पोज़ देख लीजिए और इसी तरह बीबी जी के पीछे खड़े हो जाइए।'

दीपक जी ने मुस्कुराते हुए कहा—'यह सब आप हटा लीजिए। हमें पास पोर्ट के लिये तस्वीरें चाहिएँ।'

कान के पास हाथ रख कर बुड्ढे ने कहा—

'ऐं ! क्या कहा ! कपड़ा हटा दीजिए, चोटी खोल दीजिए ! आप ठीक कहते हैं। आर्टिस्ट के हाथ बालों को जिस खूबसूरती के साथ बिखरा सकते हैं वह आपके हाथों से न हो सकेगा।'

बुड्ढा अमरबेलि के पास पहुँचा। उसके सिर से कपड़ा हटा

कर चोटी खोलने लगा। मुँह पर आँचल डाल कर वह हँसने लगी। बुड्ढे ने कहा—

'शर्माइए नहीं, आइने में देखती रहिए। यही करते करते बुड्ढे के बाल सफ़ेद हुए हैं। अपने बालों को देख कर आप दंग रह जायँगी।'

बुड्ढा खोलता ही जा रहा था। अमरबेलि विवश होकर केवल हँस रही थी। तब तक दीपक जी ने काग़ज के टुकड़े पर कुछ लिख कर बुड्ढे को दिखाया। उसे देख कर बुड्ढा बड़े आश्चर्य से बोला—

'बस! आपने पहले क्यों नहीं कहा!'

—:o:—

(२०)

कंकाल का कौतुक

दीपक जी के साथ अमरबेलि कचहरी से लौट रही थी। दो राही बातें करते जा रहे थे।

'बच्चा बच सकता है।' एक ने कहा।

'माँ मर चुकी तो बच्चा कैसे जियेगा?' दूसरे ने कहा।

अमरबेलि ताँगे में बैठी थी। फिर भी उसने दो राहियों की बातें सुन लीं। कुछ दूर आगे एक झोंपड़ी के सामने कुछ लोग खड़े दिखाई पड़े।

'कोई दुर्घटना हो गई है।' अमरबेलि ने कहा।

'शायद।' दीपक जी ने समर्थन किया।

भीड़ के पास अमरवेलि उतर गई। दीपक जी भी उतर गये। इन्हें देखते ही लोगों ने रास्ता दे दिया। झोंपड़ी के द्वार पर कुछ दिखाई पड़ा। ऐसा दीखता था जैसे नर-कंकाल पर किसी ने पतला कत्थई कपड़ा चिपका दिया हो। निकट जाकर अमरवेलि उसे देखने लगी।

'मर गया है।' एक ने कहा।

'जी रहा है।' दूसरे ने कहा।

नर-कंकाल ने दूसरे के कथन को प्रमाणित कर दिया। अमर-वेलि को सामने देखकर उसकी धँसी हुई आँखों से पानी निकल आया। उसके जीवित होने का यह पहला प्रमाण था।

पानी बहाकर आँखों की पुतलियाँ झोंपड़ी की ओर मुड़ गईं। फिर उस नर-कंकाल की एक छोटी शाखा, जो कभी एक भुजा थी, झोंपड़ी के द्वार की ओर खिसक गई। फिर होंठ भी हिले।

उन संकेतों को अमरवेलि ने समझ लिया। वह झोपड़ी में घुस गई। वहाँ उसने दूसरा कंकाल देखा। वह नर था, यह नारी थी। कमर में एक चीथड़ा चिपका हुआ था। शेष सारा भाग खुला हुआ था। उसके ऊपर एक बाल-कंकाल औंधे मुँह पड़ा था। नारी कंकाल का स्तन बच्चे के मुँह में था।

उस नर-कंकाल की भाँति इस नारी-कंकाल ने किसी का स्वागत न किया। न आँखों से जल बहाये, न कोई अंग हिला। इस अभि-नय के लिये उसे कोई दोष दे तो देता रहे। इसकी उसे कोई परवाह नहीं। इस शिष्टाचार की दुनिया को वह लात मार चुकी थी। लेकिन बच्चा अब भी उसका मरा हुआ चमड़ा चूस रहा था।

बाहर तमाशबीनों में एक सौ ग्यारह नम्बर का साइनबोर्ड सिर पर लिये एक संडमुसंड भक्तराज भी खड़े थे। वह बोल उठे—

'हे प्रभो, तेरी माया अपरम्पार है। कहीं तूने भरदूल के अंडे की रक्षा की थी, आज यहाँ यह लीला दिखा रहा है। न जाने किन कर्मों का फल है!'

'भगवान की लुभावनी लीला पसंद आई भक्त जी? कैसा पाप का फल दे रहा है? लगाइए चार लात आप भी, इन पापियों को।' दीपक जी ने कहा।

'व्यंग-बाण छोड़ रहे हो, बच्चा!'

'आप अग्नि-बाण छोड़िये भक्तराज, और पापियों के संहार में भगवान की सहायता कीजिए।'

मुर्दे के ऊपर से बच्चे को उठा कर अमरबेलि बाहर आई। छू जाने के डर से भक्तराज भाग कर दूर खड़े हुये। बच्चे को अमरबेलि के हाथों में देखकर नर-कंकाल ने सन्तोष की सूचना दी। वे बन्द हो गईं। मुँह पर पानी के छींटे दिये गये लेकिन वह नर-कंकाल न जगा।

बच्चे के लिये दूध की खोज होने लगी। दर्शकों में से एक को पैसे देकर भेजा गया। बीस मिनिट बीत गये, लेकिन वह न लौटा। दीपक जी ने कहा—

'अब तक अस्पताल पहुँच गये होते।'

बात पसन्द आई। अमरबेलि ताँगे में बैठ गई। वह अस्पताल में पहुँची। वहाँ भी दूध समाप्त हो चुका था। बच्चा नर्स को देकर अमरबेलि ने घर से दूध मँगाया। लेकिन इतनी देर तक बच्चे ने

प्रतीक्षा न की। उसके मुँह में दूध डाला गया, किन्तु गले के नीचे न उतरा। उसके प्राण पखेरू उड़ चुके थे।

यह सब देखकर दीपक जी प्रेस में पहुँचे। पांडे जी ने उन्हें एक लाल लिफ़ाफ़ा दिया। खोलने पर उसमें तीन पत्र निकले, एक लाल सुनहला छपा हुआ, बाक़ी दो सफ़ेद हस्त लिखित। इनमें से एक को दीपक जी पढ़ने लगे। उसमें लिखा था—

'दीपक जी,

या तो संगीत से आपको वैराग्य हो गया है, या आपने रेडियो का वहिष्कार कर दिया है। अक्सर मैं रेडियो पर गाती हूँ। और लोग मेरे गानों की सराहना करते हैं लेकिन आपने इस प्रकार का कोई पत्र न लिखा। आपके पास रेडियो न हो तो भेज दूँ?

इस पत्र के साथ एक निमंत्रण-पत्र भेज रही हूँ। चाहती हूँ आप भी कभी इसी प्रकार का निमंत्रण पत्र भेजें और सुहागरात में वहूरानी को गाना सुनाने का अवसर दें।

आपकी—

किरन।'

दीपकजी ने दूसरा पत्र पढ़ा—

'प्रिय दीपक जी,

आपकी उदारता से मेरी किरन का जीवन नष्ट होने से वच गया। उसका विवाह हो रहा है। वर सुन्दर, विद्वान और कुलीन है। विवाह के वाद उसे वैरिस्टर वनाने के लिये विदेश भेज रही हूँ। पांडे जी को साथ लेकर अवश्य आइए। उनके पास भी निमंत्रण-पत्र भेज रही हूँ।

वह दिन देखने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूँ जब आप भी मुझे इसी प्रकार निमंत्रित करेंगे। आशा है इस प्रार्थना की ओर भी आप शीघ्र ही ध्यान देंगे।

कुशल-कांक्षिणी
किरन की माँ।

'बड़ा अच्छा हुआ।' पांडे जी ने कहा।

'क्या?' दीपक जी ने पूछा।

'किरन का व्याह हो रहा है।'

'किरन का नहीं, वह तो दहेज में जा रही है। व्याह तो सोने का हो रहा है। बैरिस्टर बनने के लिये कोई कुलीन सोने से व्याह कर रहा है।'

'क्या बधाई देने नहीं जायँगे?'

'जा सका तो जाऊँगा। और आप?'

'अवकाश भी मिलेगा?'

'दो सप्ताह पहले निमंत्रण मिला है, फिर भी अवकाश न निकाल सकेंगे?'

'प्रयत्न करूँगा।'

'कुछ देना चाहिये।'

'जो कहिये।'

'एक बनारसी साड़ी और कानों के बुन्दे खरीद लीजिए!'

'आ जायँगे।'

भुखमरी का जो दृश्य रास्ते में दिखाई पड़ा था वह सारी घटना दीपक जी ने सुनाई। पांडे जी ने कहा—

'आपने इतना ही देखा ? ऐसी चार घटनाओं के समाचार इसी जिले से आज ही आये हैं। थोड़े दिनों यही दशा रही तो इतने प्राणी मरेंगे की लाशें सड़ती रहेंगी और उठाने वाला न मिलेगा।'

'देश को ऐसे संकट में छोड़कर विदेश भागना कहाँ तक उचित होगा ?'

'यहाँ रहने से देश का ˙कट काट सकें तो रह जाइए।'

दीपक जी सोचते रह गये। पांडेजी ने फिर कहा—

'बाहर जाकर ही आप देश की सहायता कर सकते हैं। कम से कम अपने देश की सच्ची स्थिति बाहर की दुनिया को मालूम होगी। अमरबेलि क्या कहती हैं ?'

'वह तैयार हैं।'

'पासपोर्ट के लिये दरख्वास्त दे दी ?'

'फोटो लेने में देर हो गई। कल दे दूँगा।'

'पासपोर्ट मिलते ही प्रस्थान कीजिये। यहाँ तो पिंजड़े के पक्षी जितना फड़फड़ा सकते हैं फड़फड़ा रहे हैं। पंख टूट जायँगे पर सीखचों के टूटने की सम्भावना नहीं है।'

'सीखचों के टूटने की जरूरत ही न रहेगी। बिना दाने के बेचारे पहले ही मर जायँगे!' कहते हुये हाजी मियाँ ने कमरे में प्रवेश किया।

'आइए, आपकी आवश्यकता थी। सूचना निकाल दी है। एक बात आप से बिना पूछे ही छाप दी है। क्षमा कीजियेगा।' पांडेजी ने कहा।

'कौन सी बात ?' हाजी मियाँ ने पूछा।

पांडे जी ने आलोक की एक प्रति सामने रख दी। पीरू हाजी ने पढ़ा—

कब तक भूखों मरेंगे ?

भूख की महामारी से बचने के लिये सार्वजनिक सभा।

३० जनवरी को ३ बजे टाउनहाल में अवश्य आइये और अपने प्राण बचाने के उपाय सोचिये।

'डेपुटेशन में कौन कौन होंगे ? इसको सोचा ?' हाजी मियाँ ने पूछा।

'सब कुछ सभा में तै करेंगे।' पांडे जी ने कहा।

—:o:—

(२१)

पासपोर्ट

द्वार पर कार खड़ी थी। अमरबेलि चबूतरे से उतर रही थी। तब तक दीपक जी पहुँच गये।

'किधर की तैयारी है ?' दीपक जी ने पूछा।

'टाउनहाल जाने का सोच रही थी, तब तक जज साहब की कार आ गई। आप मीटिंग में नहीं गये ?'

'हज़ारों जा रहे हैं, मैं ही जाकर तीर मार लूँगा ?'

'आपको जाना चाहिए था।'

'छोड़िए इन बातों को। ऐसी कार्रवाइयों में मुझे विश्वास नहीं। आपकी शकल कैसी हो रही है ? रोटी नहीं मिलती क्या ?'

'दस मिनिट बैठ सकेंगे ? आकर बतलाऊँगी।'

'न जाने कैसा केस है, इतना जल्द कैसे आ जायेंगी ?

'इन लोगों के यहाँ जुकाम भी सीरियस केस समझा जाता है। बहू जी के सिर में जरा सा दर्द हुआ कि झट कार भेज देते हैं। दस नहीं तो पन्द्रह मिनिट में जरूर आ जाऊँगी। साथ ही टाउन-हाल चलूँगी। तब तक रेडियो सुनिए। दीपक जी को भीतर ले जाओ सोना।' कहकर अमरबेलि कार में बैठ गईं।

भीतर जाकर दीपक जी ने कहा—

'तुम्हारी मलकिन दुबली दीखती हैं सोना। बीमार रहती हैं क्या ?'

'हम लोगों को भी चिन्ता हो रही है, बाबू जी।'

'कारण क्या है ?'

'कई दिनों से कुछ नहीं खाती हैं। आधी रोटी खाकर कहती हैं—'भूख नहीं है' और थाली अस्पताल में भेज देती हैं। इस तरह कब तक जिएँगी ? इन्हें समझाइए बाबू जी।'

'आने दो उन्हें, पूछूँगा।' कहकर दीपक जी रेडियो की चाभी घुमाने लगे। तब तक दूसरी कार द्वार के सामने रुकी। घबराए हुए पांडे जी उतर कर कमरे में आये।

'क्या हुआ ?' दीपक जी ने पूछा।

'बस, कार में बैठ जाइए।'

'कुछ सुनूँ तो सही, मेरे ही बिना आपकी सभा रुकी हुई है ?'

'जल्द चलिए, नहीं तो सैकड़ों मर जायँगे।'

आगे कुछ न कह कर दीपक जी कार में बैठ गये। कार चल पड़ी। पांडे जी कहने लगे—

'टाउनहाल का सारा मैदान भरा हुआ था। भूख की महामारी से बचने के लिये लोग अपनी अपनी सूझ प्रगट कर रहे थे। उसी समय चार जुलाहे टूटी हुई खाट कंधे पर लिये। सभा में आये। सभापति के सामने उन्होंने खाट रख दी। उस खाट पर दो मरणासन्न कंकाल थे। प्रत्येक की पेट-पीठ सट कर एक हो रही थी। उन्हें देखने के लिये लोग खड़े होने लगे। तब तक लाने वालों में से एक ने कहा—

'यहाँ आप लोग सभा कीजिए और मरने वाले उधर यों मर रहे हैं।'

सभापति ने दोनों कंकालों को अच्छी तरह देख कर कहा—

'इन्हें अस्पताल पहुँचाइए, अभी इनमें जान है।'

'आप में भी कुछ जान है? कितनों को अस्पताल पहुँचाइएगा?'

'जोश में आने से कोई फ़ायदा नहीं होगा, भाई जान।'

'ये मरने वाले कभी जोश में नहीं आए थे, जनाब, अगर जोश में आ गये होते, तो कुत्ते की मौत न मरते।'

'हम आप ही का कहना मान लें और आप ही की तरह जोश में आ जायँ तो उससे हमें क्या फ़ायदा होगा?'

'जान जायगी या रोटी मिलेगी।'

नरेन्द्र अब तक चुप था। सभापति से पहले इस बार वह बोल पड़ा—

'जान तो यों भी जा रही है। आप यही बतलाइए कि रोटी कहाँ मिलेगी?'

'वहाँ मिलेगी, जहाँ ये दोनों मर रहे थे। वहीं गेहूँ का गोदाम है।'

'आप राह दिखाइए, हम आपके साथ चलते हैं।'

ऐसा कहकर नरेन्द्र आगे बढ़ा। सारे विद्यार्थी उसके साथ चल पड़े। उनके पीछे हजारों की भीड़ चल पड़ी। सबको रोकने के लिये सभापति जी चिल्लाते रहे, लेकिन किसी ने न सुना। 'रोटी लेंगे, रोटी लेंगे।' के नारे लगाते सब चले गये।'

सारी घटना सुनकर दीपक जी ने कहा—

'इसमें मैं क्या करूँगा, पांडे जी ?'

'भीड़ का नेतृत्व करने वाले आपके विद्यार्थी हैं। आपका शासन अवश्य मानेंगे।'

'यह आपका भ्रम है पांडे जी, कर्तव्य के सामने मेरे अनुचित शासन को वे ठुकरा देंगे।'

रायसाहब चम्पालाल की कोठी के सामने सड़क पर भीड़ खड़ी थी। कार यहीं रुक गई। गोदाम के तालों पर हथौड़ों की चोट पड़ रही थी। 'रोटी दो, खाना दो, जीने दो' के नारे लग रहे थे।

'इन्हें शान्त कीजिए, दीपक जी।' पांडे जी ने कहा।

'कैसे करूँ ? क्या कह कर करूँ ? क्या यह कहूँ कि गोदाम पर हमला मत करो, घर जाओ और भूखों मरो ?' दीपक जी ने कहा।

इसी समय गोदाम के ऊपर कोठे की एक खिड़की खुल गई। खिड़की के बाहर सिर निकाल कर कोई चिल्लाने लगा—शान्त हो जाइए, शान्त हो जाइए, बातें करना चाहता हूँ—शान्त हो जाइए, बातें करना चाहता हूँ।'

उसके साथ ही सारे विद्यार्थी चिल्ला उठे—'शान्त हो जाइए, शान्त हो जाइए।'

दो मिनिट में सारी भीड़ शान्त हो गई। खिड़की से फिर आवाज़ आई—

'मैं हूँ सेठ जी का मुनीम। आप सब लोग बैठ जायँ। बातें करने के लिये केवल एक आदमी खड़ा हो जाय।'

'बैठिए, बैठिए' का शोर होने लगा। थोड़े से विद्यार्थियों को छोड़ कर सारी भीड़ बैठ गई। अन्त में विद्यार्थी भी बैठ गये, केवल नरेन्द्र खड़ा रहा।

'कहिए।' नरेन्द्र ने कहा।

'हमें आपके साथ पूरी सहानुभूति है।' मुनीम ने कहा।

'शब्दों में नहीं. उसे रोटियों में प्रगट कीजिए और हमारे प्राण बचाइए।'

'हम सचमुच चाहते हैं कि आपको अनाज मिल जाय।'

'तो गोदाम खोल दीजिये।'

'गोदाम का गेहूँ हमारा नहीं है। वह सरकारी माल है।'

'तब आपको बोलने की ज़रूरत नहीं।'

'लेकिन हम इस गोदाम की रक्षा कर रहे हैं।

'हम भी अपने प्राणों की रक्षा कर रहे हैं।'

'इसके लिये उचित रास्ता पकड़िये।'

'पेट की ज्वाला ने हमें ठीक ही रास्ता दिखाया है।'

'आपको अपनी शिकायत सरकार के सामने रखनी चाहिए।'

'सलाह नहीं, हमें रोटी चाहिए।'

'हुल्लड़बाजी न मचाइए, शान्तिपूर्वक चले जाइए।'

'हम हुल्लड़बाज नहीं हैं। हम भूखे हैं। यहाँ हमारा भोजन रक्खा हुआ है। हम उसे खायँगे। रुकावट डालने का परिणाम भयानक होगा।'

'परिणाम भयानक होगा आपके लिये। आपके साथ भीड़ है, इसलिए धमकी दे रहे हैं! फिर कह रहा हूँ, भीड़ को हटा लीजिए।' इस बार सेठ जी के लड़के ने खिड़की पर आकर कहा।

'खाली हाथ, खाली पेट भीड़ नहीं हटेगी।' कहकर नरेन्द्र ने संकेत किया। फिर तालों पर हथौड़े बजने लगे।

'पुलिस सुपरिंटेन्डट को दोबारा फोन कीजिए, मुनीम जी।' लड़के ने फिर कहा।

'फोन का कनेक्शन काट दिया गया है।' मुनीम जी ने कहा।

'तो देखते क्या हो? बन्दूकें कब काम आवेंगी?' लड़के ने फिर कहा।

उसी दम दो नलिया बन्दूक़ खिड़की से बाहर निकली। उसने नरेन्द्र को निशाना बनाया।

'रुकिये' दीपक जी ने चिल्लाकर कर कहा और उछल कर नरेन्द्र के आगे खड़े हो गये।

दीपक जी की आवाज़ का जवाब बन्दूक़ ने दिया। उसी दम 'धायँ-धायँ' गरज उठी। एक गोली कमर में लगी। कटे हुये वृक्ष की भाँति दीपक जी ज़मीन पर गिर पड़े।

उन्हें पीठ पर उठाकर नरेन्द्र भीड़ से बाहर आया।

'यह क्या कर दिया दीपक जी?' नरेन्द्र ने कहा।

'जो दूसरों को मरना सिखाता है, उसे नमूना भी तो पेश करना चाहिए।' दीपक जी ने कहा।

'एक नरेन्द्र को बचाने के लिये सारे देश का दीपक बुझा देना, यही आपका नमूना है!' नरेन्द्र ने कहा।

'बुझने दो, हज़ारों दीपक जल उठेंगे।' दीपक जी ने कहा।

इसी समय पांडे जी पास आ गये। दीपक जी कार में रक्खे गये। कार चल पड़ी। सेवा सदन पहुँचने से पहले ही दीपक जी बेहोश हो गये।

उधर गोली का जवाब ईंट पत्थरों से दिया गया। ताला भी टूट गया। फाटक भी खुल गया। लेकिन ठीक समय पर पुलिस आ पहुँची। उसने टियरगैस छोड़ दिया। कुछ लोग भाग गये, कुछ पकड़े गये।

सेवा-सदन से पांडे जी दस बजे रात में लौटे। दूसरे दिन फिर चार बजे दीपक जी को देखने गये। फाटक पर नरेन्द्र मिला।

'कैसे हैं?' पांडे जी ने पूछा।

'होश में हैं।' नरेन्द्र ने कहा।

'बच जायँगे?'

'यही प्रश्न खन्ना बाबू से पूछा गया था। उन्होंने कहा—दो दिन बाद पूछना।'

दबे पाँव पांडे जी कमरे में पहुँचे। कुर्सी पर बैठ गये। दीपक जी लेटे हुए थे। उनके मुख पर अनेक भावों की छाया पड़ रही थी। एक बार घृणा का भाव आया। फिर माथे पर बल पड़ गया, आँखें चढ़ गईं। फिर देखते ही देखते शांत हो गये। क्षण भर बाद चेहरे पर मुस्कुराहट आ गई।

'चित्त को शान्त रखिए, दीपक जी।' पांडे जी ने कहा।

पांडे जी की ओर देखते हुए दीपक जी कुछ देर चुप रहे, फिर बोले—

'पुनर्जन्म सचमुच होता है, पांडे जी ?'

'कहते तो हैं।'

'विश्वास कैसे हो ?'

'इसकी आवश्यकता ?'

'विश्वास हो जाने से मुझे शान्ति मिल जाती।'

'कैसी शान्ति ?'

'जो कुछ न कर सका उसे नया चोला पहन कर कर, डालता।'

'इस चोला से निराश न हों दीपक जी।'

'शायद इसी प्रवृत्ति ने पुनर्जन्म की माया रच रक्खी है।'

'किस प्रवृत्ति ने ?'

'आत्म-प्रवंचना की।'

आगे कुछ कहने से दीपक जी बहँस करने लगेंगे। इसलिये पांडे जी चुप रह गये। किन्तु दीपक जी चुप न हुए। उन्होंने फिर कहा—

'कमर की हड्डी टूट चुकी है, इस पर भी जीने की आशा रक्खूँ तो क्या यह आत्मप्रवंचना न होगी? असफलता का एक काँटा अन्तस्तल में पड़ा रह गया, उस कसक को भूलने के लिये दीपक जी अपने आपको धोखा नहीं दे सकते।'

'आपने विश्वव्यापी विप्लव का बीज बो दिया, दीपक जी। इसे जीवन की असफलता नहीं कह सकते।'

'आप तो बहुत बड़ी बात कह रहे हैं पांडे जी। मैं तो एक तितली भी न पकड़ सका।'

'पकड़ने से तितली नष्ट हो जाती है, दीपक जी। वह तो दूर से ही आँखों को सुख देती है।'

'उतना ही सुख दे सकती है, जितना भूखे भिखारी को भगवान के आगे रक्खी हुई इमर्तियाँ। फिर भी आप दूर से ही दिखा दीजिए।'

'पिछली रात वह यहीं तो थीं।'

'रही होंगी। मैंने नहीं देखा। फिर बुला लीजिए।'

'आज नहीं आ सकतीं।'

'कारण?'

'उठ नहीं सकतीं।'

'कल तक इतनी दुर्बल न थीं। रात ही रात उन्हें क्या हो गया!'

'आप के ही पास थीं और आप नहीं जानते?'

'जानता तो पूछता ही क्यों?'

'तो उन्हीं से पूछिएगा।'

'तो ले चलिए उनके पास।'

'इस समय उनके पास जाना घातक होगा।'

'मेरे लिये या उनके लिये?'

'दोनों के लिये।'

'उनके लिये क्यों घातक होगा। यही समझा दीजिए।'

'तो सुनिए, पिछली रात खन्ना बाबू जो कुछ कर सकते थे उन्होंने किया। उनके चले जाने के बाद वह यहीं रुक गईं। आप

को होश आने की प्रतीक्षा करती रहीं। आधी रात में आपके पास ही वह बेहोश पाई गई।'

'यह कैसा रहस्य! किसने देखा?'

'नर्स ने।'

'वह क्या कहती है?'

'कहती है कि आपका रक्त बहुत अधिक बह गया था। रक्त की कमी से रात में ही हृदय की गति रुकना चाहती थी। उसी दम उन्होंने रक्त की कमी पूरी कर दी।'

'अपने रक्त से?'

'रक्त देकर वहीं बैठ गई। कुछ देर बाद दूध लेकर नर्स आई तो वह बेहोश मिलीं।'

'अब कैसी हैं?'

'तब से अब तक कई बार बेहोश हो चुकी हैं।'

'मुझे उनके पास पहुँचाइए।'

'खन्ना बाबू से पूछ लूँ।'

'जाना मुझे है, पूछेंगे खन्ना बाबू से? आप जानते हैं कि मैं नहीं बचूँगा, इसलिये इतना सतर्क रहने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

पांडे जी जानते थे कि दीपक जी अपना हठ नहीं छोड़ेंगे। उन्होंने अस्पताल के आदमियों से कहा। स्ट्रेचर आ गया। पांडे जी अमरबेलि को सूचना देने के लिये चले गये। उसके चबूतरे पर चढ़ रहे थे तभी खन्ना बाबू वहाँ से निकल रहे थे।

'जी जायगी डाक्टर बाबू?' फुलिया ने पूछा।

'अमरबेलि तो अमर है।' कह कर खन्ना बाबू कार में बैठे गये।

भीतर जाकर पांडे जी ने दीपक जी के आने की सूचना दी।

'उन्हें रोकिये। हिलने डोलने से उनकी हालत बिगड़ जायगी। मैं ही उनके पास पहुँच जाऊँगी।'

'अब तो लोग ला रहे होंगे।'

'तो आने दीजिए। एक ओर खाट यहाँ डाल दे सोना।'

पांडे जी चले गये।

सोना ने खाट बिछाकर बिस्तर लगा दिया।

'आज कपड़ा नहीं बदला सोना।' अमरबेलि ने कहा।

'लाती हूँ।' कहकर सोना चली गई और एक धोती लेकर आई।

'यह नहीं, ज़रा अच्छी सी ला।'

दूसरी बार सुनहली गोट वाली जार्जेट की सतरंगी सारी लेकर सोना आई।

'इसके साथ का जम्पर भी ले आ।' अमरबेलि ने कहा।

जम्पर भी आ गया। पैर की ओर पलंग में आइना लगा हुआ था। उसमें मुँह देख कर अमरबेलि ने कहा—

'सचमुच बीमार लगती हूँ क्या सोना?' ज़रा क्रीम और कंघी तो ले आ।'

क्रीम, कंघी, तेल, तौलिया, साबुन और गर्म पानी लेकर सोना आई। गीले तौलिये से हाथ पैर और मुँह साफ़ कर उसने क्रीम मल दिया। फिर बालों में सुगंधित तेल डाल कर, कंघी कर के उसने लम्बी चोटी निकाल दी। बीच में एक बार अमरबेलि ने कहा—

'मैं न रहूँ तो माँ को सँभालना, सोना। वह तुम्हें ज्यादा दिन तकलीफ़ न देगी। फिर सेवा-सदन के लोग भी कुछ सहायता करेंगे।'

बातें सुनकर सोना की आँखें भर आईं। उसे देख कर अमरवेलि ने कहा—

'ऐसा न करो सोना, कोई गाना गाओ।'

'मुझे गाना नहीं आता।'

'तो रेडियो बजने दो।'

सोना ने चाभी घुमा दी। कहीं से जलतरंग बज रहा था।

'रुकजा। वहीं छोड़ दे। बड़ा अच्छा बज रहा है। अब जाकर माँ के लिये खाने और सोने का प्रबन्ध कर। कमरे में रोशनी जलाती जा।'

स्विच दबा कर सोना चली गई।

जिस समय दीपक जी कमरे में पहुँचे, बिजली के प्रकाश में सारा कमरा हँस रहा था। दूध से चादर पर चमकती गोट वाली सतरंगी सारी और जम्पर पहने अमरवेलि पड़ी थी। जैसे उड़ने के लिये तितली ने पंख फैला रक्खे हों। रेडियो में जलतरंग बज रहा था।

स्ट्रेचर से उठा कर दीपक जी पलंग पर रख दिये गये। लाने वाले आदमी स्ट्रेचर लेकर चले गये। प्रयत्न करने पर भी दीपक जी बड़ी देर तक न बोल सके। अमरवेलि भी शान्त थी। जलतरंग की ध्वनि ने उसकी कल्पना के पंख फैला दिये। उन्हीं पंखों के सहारे वह इस समय जहाज़ पर जा बैठी थी। उसके चारों

ओर अनंत सागर था। फुहारें छोड़ती हुई विशाल लहरें उसके आगे नाच रही थीं। चीणस्वर में दो बार दीपक जी ने उसका ध्यान आकृष्ट करना चाहा, किन्तु उसका जागृत स्वप्न न टूटा। दीपक जी ने उसकी ओर हाथ बढ़ाया। चौंक कर उसने कहा—

'पासपोर्ट लाये हैं क्या, दीपक जी ?'

'चलने की तैयारी करली है, क्या ?'

'बिल्कुल, देखते नहीं ?'

'कहाँ चलेंगी ?'

'वहीं, नई दुनिया।'

जलतरंग बज चुका। आवाज़ आई—

'यह कलकत्ता है। अभी विनय बाबू जलतरंग बजा रहे थे। अब किरनमाला से एक गीत सुनिये।'

'किरनमाला !' विस्मय के साथ ये शब्द दीपक जी के मुख से निकल गये।

'कैसे चौंक पड़े ?'

'दो दिन पहले उसका पत्र आया था।'

रेडियो से साज बजने की आवाज़ आने लगी।

'उनसे आपका परिचय है, कोई विशेष बात लिखी थी क्या ?'

'जाने भी दीजिये।'

'कहने योग्य नहीं है ?'

'क्यों नहीं, उसकी बड़ी अभिलाषा थी कि मैं व्याह करूँ और वह सुहाग-रात में गाना गाकर बहू रानी का स्वागत करे।'

'बड़ी सुन्दर अभिलाषा थी।'

गाना आरम्भ हुआ—

'योगी चन्दन-चिता सजाउ।'

गाने का टेक सुनकर दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। दोनों मुस्कुराये, लेकिन अमरवेलि की मुस्कुराहट अधिक देर तक टिक न सकी। उनके मुख पर बेचैनी के चिन्ह दीख पड़े।

'क्या बात है अमर ?' दीपक जी ने पूछा। अमरवेलि कोई उत्तर न दे पाई। उधर रेडियो गा रहा था—

'फूलन सेज बिछाउ, योगी अपने हाथ सुलाउ।'

दीपक जी अमरवेलि की ओर देख रहे थे। वह हृदय पर हाथ रक्खे साँस ले रही थी।

'धड़कन हो रही है क्या ?' दीपक जी ने पूछा।

अमरवेलि बोल न सकी। दीपक जी ने उसके हृदय पर हाथ रक्खा।

'हृदय की गति बहुत बढ़ गई है, खन्ना बाबू को बुलाना चाहिये।' दीपक जी ने कहा।

सोना को बुलाने के लिये दीपक जी घंटी बजाना ही चाहते थे तब तक अमरवेलि ने हाथ के इशारे से उन्हें रोक दिया। तकिये के नीचे से एक लम्बी सी डिबिया निकाल कर उसने दीपक जी को दी। उसे खोलते ही बिजली की रोशनी में बिजली की तरह हार चमक उठा, उधर किरणमाला गा रही थी—

'योगी चंदन चिता सजाउ।'

हार लिये दीपक जी अमरवेलि की ओर ताक रहे थे। उसने कहा—

'समय आ गया दीपक जी, हार पहनाइये।'

शीघ्र प्रकाशित होने जा रही है।

कलंक

अनरकेलि के लेखक

की

दूसरी पुस्तक

—:o:—

साहित्य सेवक कार्यालय,

जालपादेवी, बनारस

Cover printed at the Standard Press, Allahabad.